जुलाई 2021

दादावाणी

Retail Price ₹ 15

ज्ञानरूपी प्रकाश

ज्ञानप्रकाश अर्थात् अनंत जन्मों का अज्ञानता का अंधकार हटा।
यानी कि भान हो गया कि क्या है यह सब! सभी ज्ञानियों का ज्ञान प्रकाश एक ही होता है।
जैसे-जैसे आवरण कम होते जाते हैं वैसे-वैसे प्रकाश बढ़ता जाता है।

पूज्यश्री दीप्रकभाई के लाइव सत्संग देखने के लिए अलग-अलग डिजिटल माध्यम

दादा भगवान एप

DADABHAGWAN.TV

ऐ कनेक्ट एप

YouTube

LIVE

Akonnect App

Dadabhagwan TV

DADABHAGWAN.TV

इन सभी माध्यमों द्वारा सुबह की आरती, स्पेशियल वीडियो सत्संग, सत्संग हाइलाइट्स, शाम की आरती और दूसरे सभी लाइव सत्संग देखे जा सकेंगे।

Dadabhagwan App

Youtube

YouTube

दादा भगवान फाउन्डेशन की ऑफिशियल यू ट्यूब चेनल द्वारा नए मुमुक्षुओं एवं महात्माओं के लिए सांसारिक उलझनों का हल एवं आध्यात्मिक प्रगति के लिए वीडियो एवं शॉर्ट वीडियो उपलब्ध हैं।

Youtube.com/dadabhagwanfoundation

इस चेनल में अपलोड होने वाले लेटेस्ट वीडियो की जानकारी प्राप्त करने के लिए आज ही दादा भगवान फाउन्डेशन की यू ट्यूब चेनल Subscribe करें और दबाएँ।

वर्ष : 16 अंक : 9
अखंड क्रमांक : 189
जुलाई 2021
पृष्ठ - 28

Editor : Dimple Mehta
© 2021
Dada Bhagwan Foundation
All Rights Reserved.
Printed & Published by
Dimple Mehta on behalf of
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj,
Dist.-Gandhinagar - 382421

Owned by
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj,
Dist.-Gandhinagar - 382421

Printed at
Amba Offset
B-99, GIDC, Sector-25,
Gandhinagar – 382025.

Published at
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj,
Dist.-Gandhinagar - 382421

संपर्क सूत्र :
त्रिमंदिर, सीमंधर सिटी,
अहमदावाद-कलोल हाइ-वे,
पो.ओ.: **अडालज**,
जि.: गांधीनगर-382421.
फोन : 9328661166-77
email: dadavani@dadabhagwan.org
www.dadabhagwan.org
दादावाणी संबंधी शिकायत के लिए:
+91 8155007500

सबस्क्रिप्शन (सदस्यता शुल्क)
5 साल
भारत : 650 रुपये
यू.एस.ए. : 60 डॉलर
यू.के. : 45 पाउन्ड
वार्षिक
भारत : 150 रुपये
यू.एस.ए. : 15 डॉलर
यू.के. : 10 पाउन्ड
भारत में D.D./M.O.
'महाविदेह फाउन्डेशन' के नाम से
संपर्कसूत्र के पते पर भेजें।

दादावाणी

ऐसे ज्ञानी पुरुष ही हैं खुद का शुद्धात्मा

संपादकीय

इस कलिकाल में विनाशी सुख-दुःख में उलझे हुए और भट्टी में शक्करकंद की तरह भुन रहे जीवों के लिए अविनाशी सुख और आत्यंतिक मुक्ति का मार्ग बताने वाले अक्रम विज्ञानी दादा भगवान, भादरण गाँव के निवासी श्री अंबालाल मूलजी भाई पटेल (दादाश्री) के देह मंदिर में जून 1958 में सूरत के (रेल्वे) स्टेशन पर पूर्ण रूप से प्रकट हुए थे। एक ही घंटे में उनमें अपूर्व ज्ञान प्रकट हो गया और जगत् के तमाम गूढ़ रहस्य खुल गए! ज्ञान प्रकट होते ही ब्रह्मांड दिखाई दिया कि यह जगत् किस तरह से चल रहा है, भगवान कौन हैं, इस दुनिया को कौन चलाता है, मैं कौन हूँ, यह कौन है, यह सब किस आधार पर मिलता है, वह सबकुछ दिखाई दिया। जब से ज्ञान प्रकट हुआ, तभी से देह अलग और खुद आत्मस्वरूप से अलग, ऐसी दशा उन्हें निरंतर रहती थी और ज्ञानविधि में हमें भी वे वैसा ही आत्मानुभव करवा पाए।

प्रस्तुत अंक में, दादाश्री शुद्धात्मा के अनुभव के बारे में विशेष स्पष्टता से बताते हुए कहते हैं कि ज्ञानविधि में शुद्धात्मा पद की प्रतीति तो हो जाती है। और फिर *लक्ष* बैठ जाता है इसलिए वह श्रद्धा टूटती नहीं है। फिर आगे जाकर जैसे-जैसे अनुभव होते जाते हैं, वैसे-वैसे खुद को खुद स्वरूप दिखाई देता है। अब, हमें यह अनुभव कौन करवा सकता है? ज्ञानी पुरुष जो कि निरंतर शुद्धात्मा पद में रहते हैं, जिन्हें कुछ भी जानना बाकी नहीं हैं, वे। अतः जब भी ऐसे ज्ञानी पुरुष मिल जाएँ तब अपने खुद के आत्मा का काम *निकाल* लेना चाहिए।

शास्त्रों में आत्मज्ञान और आत्मा के स्वरूप के बारे में विशेष स्पष्टता तो की गई है लेकिन वे बहुत ही सूक्ष्मता से दिए हुए हैं, इसलिए इस कलिकाल में उसका यथार्थ अर्थ समझना अत्यंत कठिन हो जाता है। उसे यथार्थ रूप से समझने के लिए ज़रूरत पड़ती है, अनुभवी ज्ञानी पुरुष की। श्री कृष्ण भगवान ने कहा था कि 'ज्ञानी पुरुष ही मेरा आत्मा है' श्रीमद् राजचंद्र ने भी कहा था कि 'ज्ञानी पुरुष देहधारी परमात्मा ही हैं।'

'मैं शुद्धात्मा हूँ', यह *लक्ष* बैठ जाना, वह तो बहुत बड़ी बात है, अत्यंत कठिन है। *लक्ष* अर्थात् जागृति और जागृति अंतिम ज्ञान नहीं है। अंतिम ज्ञान तो, आत्मा का केवलज्ञान स्वभाव है। जिसका अनुभव ज्ञानी कृपा से संभव है। आत्मा जानने के लिए तो ज्ञानी पुरुष के पास ही जाना पड़ेगा, क्योंकि उनके चरणों में ही मोक्ष है। ज्ञानी ही खुद का शुद्धात्मा हैं। अपना खुद का ही आत्मा हैं। ज्ञानी की आराधना शुद्धात्मा की आराधना करने के बराबर है और वही परमात्मा की आराधना है। यदि ज्ञानी मिल जाएँ और उनकी कृपा दृष्टि प्राप्त हो जाए तो मोक्ष सहज ही हाथ में आ जाए। इसीलिए दादाश्री महात्माओं से कहते हैं कि, 'हमारी आज्ञा का पालन करना', दादा-दादा करोगे तो भी आपका काम हो जाएगा।

- **जय सच्चिदानंद**

ऐसे ज्ञानी पुरुष ही हैं खुद का शुद्धात्मा

'दादावाणी' सामायिक में मुद्रित पाठ्य सामग्री मूलत: गुजराती 'दादावाणी' का हिन्दी रूपांतर है। कोष्ठक में दिए गए शब्द या तो अंग्रेज़ी शब्द का अर्थ हैं अथवा शब्द का तात्पर्य स्पष्ट करने हेतु वृद्धित किए गए वाक्यांश है। यहाँ पर 'आत्मा' शब्द को गुजराती और संस्कृत की तरह पुल्लिंग में प्रयोग किया गया है। जहाँ पर भी 'चंदूभाई' नाम का प्रयोग हुआ है, वहाँ पर पाठक खुद को समझें। 'दादावाणी' के इस अंक में अगर आप कोई बात न समझ पाएँ तो प्रत्यक्ष सत्संग में पधारकर समाधान प्राप्त करें। अनुवाद में कोई कमी नज़र आए तो हमें सूचित करने की कृपा करें, ताकि भविष्य में सुधार किया जा सकें। ऐसी क्षतियों के लिए हम आपके क्षमाप्रार्थी है।

स्थिति तब की, जब सूरत स्टेशन पर ज्ञान हुआ था

प्रश्नकर्ता : आपने कहा कि 1958 में आपको सूरत स्टेशन पर ज्ञान हुआ था। उससे पहले आपकी स्थिति क्या थी?

दादाश्री : अरे! अहंकारी, पागल स्थिति, बंधन वाला। उस बंधन दशा को मैंने देखा है। मुझे ऐसा ध्यान में है कि बंधन दशा ऐसी होती है और इस मुक्त दशा के भान को भी मैं जानता हूँ।

प्रश्नकर्ता : वह ज्ञान आपको किस प्रकार से हुआ?

दादाश्री : वह तो सभी साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स, सभी संयोग इकट्ठे हो गए थे। इकट्ठे होते हैं तब हो जाता है। वह किसी को ही होता है, वर्ना नहीं होता। वह चीज़ नहीं हो सकती। ऐसा हो जाएगा, ऐसा तो मैंने सोचा ही नहीं था।

प्रश्नकर्ता : जब आपको ज्ञान हुआ था, उस समय की स्थिति के बारे में कुछ बताएँगे हमें?

दादाश्री : स्थिति तो यही की यही। उसका कोई तरीका-वरीका नहीं होता। अरे... अंदर आवरण टूट जाते हैं। अंदर आवरण खुल जाते हैं। आप उलझन में पड़े हुए हों तब अंदर सूझ पड़ती है या नहीं पड़ती? आवरण टूटते हैं इसीलिए सूझ पड़ जाती है। उसी प्रकार जब ये आवरण टूट गए तो इन सब बातों का पता चल गया कि, 'यह जगत् कौन चलाता है, किस तरह चलता है, मैं कौन हूँ, ये कौन है'। तो जितना बताया जा सकता है, उतना ही बता रहा हूँ। बाकी सब तो अनुभव है, उसे जब आप खुद देखोगे तब। बाकी तो वाणी है ही नहीं वहाँ पर, व्यक्त करने के लिए वाणी नहीं है। अत: अभी तो 'मैं कौन हूँ' इतना जान लिया तो सभी कुछ हो गया। कम्प्लीट! फुल हो गया।

प्रश्नकर्ता : उसका अनुभव शुद्धात्मा को हुआ या *पुद्गल* को हुआ, किसे हुआ वह अनुभव?

दादाश्री : वह अनुभव, खुद ने खुद को ही जाना, अन्य कुछ नहीं। अन्य को 'मैं' मानता था, तो खुद अपने आप को ही जाना कि 'मैं यह हूँ, यह नहीं'। अलग हो गया।

जब एक ही दिन में प्रकट हो गया, फिर! कल तक 'ए.एम.पटेल' थे और आज शुद्धात्मा बन गए, दृष्टि मात्र से। दृष्टि बदल गई न वहाँ!

प्रश्नकर्ता : आपको एक ही घंटे में किस तरह से दृष्टि पक्की हो गई?

दादाश्री : कृपा से क्या नहीं हो सकता? भगवान की कृपा हो जाए तो क्या नहीं हो सकता?

प्रश्नकर्ता : हम पर तो, आपके अंदर जो

प्रकट हुए हैं, उन दादा भगवान की कृपा होती है। आप पर किसकी (कृपा) हुई?

दादाश्री : मुझ पर कैसी हुई, उसका क्या पता चले? मुझे किसी ने बदला! यह 'वीतराग विज्ञान', ऐसा नहीं है कि हर किसी को समझ में आ सके। 'मुझ में' यह प्रकट हुआ उसमें मेरा भी कोई पुरुषार्थ नहीं है। वह तो 'बट नैचुरल' (स्वाभाविक) हुआ है।

ज्ञानियों ने अनुभव किया, अनादि ज्ञान प्रकाश

प्रश्नकर्ता : आप जो ज्ञान देते हैं, वह ज्ञान तीर्थंकरों जैसा है?

दादाश्री : सभी तीर्थंकरों का ज्ञान एक ही प्रकार का है। उसमें कोई अंतर नहीं है। भाषा में अंतर हो सकता है लेकिन ज्ञान एक ही प्रकार का। अभी भी ज्ञान वही है लेकिन भाषा में अंतर है। अनादिकाल से *पुद्गल* के प्रकाश में और ज्ञान प्रकाश में फर्क रहता ही है। सभी ज्ञानियों का ज्ञान प्रकाश एक ही प्रकार का और इस *पुद्गल* का प्रकाश, सभी लाइटों का प्रकाश एक ही प्रकार का। वे दोनों प्रकाश अलग-अलग स्वभाव के हैं।

ज्ञान तो वही है, शुरू से लेकर अंतिमदशा तक सिर्फ प्रकाश बढ़ता जाता है। जैसे-जैसे आवरण कम होते जाते हैं वैसे-वैसे प्रकाश बढ़ता जाता है। निरावृत हुआ कि एक ही प्रकाश।

प्रश्नकर्ता : प्रकाश एक ही है लेकिन तरीका अलग है। वीतरागों का तरीका और यह तरीका, अर्थात् उस प्रकाश को, मूल प्रकाश को प्राप्त करने का तरीका?

दादाश्री : मूल प्रकाश तो वही है, उसे कोई बदल ही नहीं सकता। अभी तो अनंत चौबीसी तक यह जो प्रकाश है, उसमें बदलाव ही नहीं होगा न!

प्रश्नकर्ता : अर्थात्?

दादाश्री : जो विज्ञान नामक प्रकाश है, उसमें कोई बदलाव ही नहीं आता न!

ज्ञान अर्थात् आत्मा और विज्ञान अर्थात् परमात्मा। यह तो 'साइन्स' है। आत्मा व परमात्मा का 'साइन्स' यानी सिद्धांत! उसमें कहीं भी अंश मात्र 'चेन्ज' (परिवर्तन) नहीं हो सकता और यह ठेठ आरपार निकाल देता है। ज्ञानघन आत्मा में आने के बाद, अविनाशी पद की प्राप्ति होने के बाद, विज्ञानघन को समझना चाहिए।

ज्ञानी बताते हैं विज्ञान, 'देखकर'

विज्ञान ही है पूरा। यह सारा विज्ञान मुझे कुछ याद नहीं करना पड़ता। मुझे तो दिखाई देता है यह सारा विज्ञान। वह जो दिखाई देता है उसमें से बोलता हूँ फटाफट। जब आप पूछते हैं तब मैं जवाब देता हूँ, जो दिखाई देता है, उस में से। पुस्तक का देखने में तो देर लगती है, परंतु इसका देखने में देर नहीं लगती। इसमें प्रकाश गुण उत्पन्न होता है, फिर गाढ़ प्रकाश उत्पन्न होता है, फिर अवगाढ़ प्रकाश उत्पन्न होता है। अवगाढ़ प्रकाश अंतिम प्रकाश है। प्रकाश गुण उत्पन्न होता है, ज्ञान मिलते ही सबसे पहले प्रकाश गुण उत्पन्न होता है।

प्रश्नकर्ता : उस प्रकाश का अनुभव हो सकता है क्या?

दादाश्री : मैं अनुभव से ही बताता हूँ। प्रकाश का अनुभव अर्थात् उस प्रकाश में देखकर ही मैं बताता हूँ। आप में भी देख सकता हूँ। इन आँखों से नहीं दिखाई देता, दिव्यचक्षु से दिखाई देता है।

अनंत जन्मों का गया अंधेरा

प्रश्नकर्ता : आत्मज्ञान हुआ अर्थात् प्रकाश हुआ, ऐसा कहते हैं।

दादाश्री : प्रकाश अर्थात् अनंत जन्मों का अंधेरा गया, अंधेरा कैसा? यह अंधेरा नहीं, यह डार्कनेस नहीं, वहाँ डार्कनेस नहीं होती। यह तो डार्कनेस है। अज्ञानता का अंधेरा गया अर्थात् भान हो गया कि क्या है यह सब।

प्रश्नकर्ता : इसलिए समझ में आ गया, ऐसा?

दादाश्री : हाँ, समझ! प्रकाश अर्थात् समझ।

प्रश्नकर्ता : आप कहते हैं न, ज्ञान अर्थात् समझ नहीं लेकिन ज्ञान अर्थात् प्रकाश।

दादाश्री : हाँ... परंतु समझ कह सकते हैं। उसे फिर इस तरह से समझना है। समझ में आएगा तभी ज्ञान होगा न। समझ, वह श्रद्धा है। समझ, वह दर्शन है। समझ में आए तो ज्ञान होता है और ज्ञान अर्थात् प्रकाश है।

प्रकाश एक ही है, परंतु कुछ भाग में उसे समझ वाला कहते हैं और कुछ भाग में उसे जान (जानने) वाला कहते हैं। वर्ना, प्रकाश ऐसा कोई अन्य उजाला नहीं है जबकि सभी लोग उसे दीये की ज्योति जैसा समझते हैं। ऐसा नहीं है।

इन्द्रियातीत बेजोड़ ज्ञान प्रकाश

यह ज्ञानरूपी प्रकाश है। प्रकाश अर्थात् बैठे-बैठे सभी कुछ दिखाई दे। और यह जो ज्ञान है, वही प्रकाश है। और वह प्रकाश ही आत्मा है। ज्ञान ही आत्मा है। आत्मा अन्य कोई वस्तु नहीं है, केवलज्ञान ही है। केवल अर्थात् जिसमें अन्य कोई भी मिलावट न हो, ऐसा ज्ञान। उसे कहते हैं प्रकाश, उसी को कहते हैं आत्मा।

प्रश्नकर्ता : उस प्रकाश की हम किसी अन्य चीज़ से तुलना कर सकते हैं?

दादाश्री : नहीं, नहीं, नहीं। तुलना हो ही नहीं सकती। बेजोड़ वस्तु की तुलना हो सकती है क्या? बेजोड़ वस्तु जैसी अन्य कोई चीज़ हो ही नहीं सकती इस दुनिया में।

प्रश्नकर्ता : तो फिर वह जो प्रकाश है, वह हमें किसी इन्द्रियों की मदद से प्राप्त नहीं हो सकता?

दादाश्री : वह प्रकाश, वह इन्द्रियों की मदद भी नहीं करता और उनकी मदद से प्राप्त भी नहीं हो सकता।

प्रश्नकर्ता : इन्द्रियातीत है?

दादाश्री : इन्द्रियातीत है और सभी से अतीत है आत्मा।

सूर्य द्वारा नहीं दिखाई देता वैसा दिखाई देता है ज्ञान प्रकाश में

प्रश्नकर्ता : जैसे कि अंधेरा हो और हम दियासली जलाएँ, तब यह कागज पड़ा हो तो उसके प्रकाश में हमें यह दिखाई देता है तो उसी तरह से जब आत्मा का प्रकाश होता है तो हमें क्या दिखाई देता है? किस तरह से दिखाई देता है?

दादाश्री : जो दुनिया में नहीं दिखाई देता वह सबकुछ दिखाई देता है। उजाले में नहीं दिखाई देता, बड़े से बड़े सूर्यनारायण द्वारा भी जो नहीं दिखाई, वह दिखाई देता है।

प्रश्नकर्ता : हम स्वप्न में जो सबकुछ देखते हैं, वह किस प्रकाश में देखते हैं? उसे आत्मा का प्रकाश कहेंगे?

दादाश्री : नहीं! वह सब यही दखल है। जो कुछ स्वप्न में दिखाई देता है, वह सब यहीं की दखल है। उस प्रकाश में तो कुछ भी नहीं दिखाई देता। स्वप्न में और जागृति में किसी में भी नहीं दिखाई देता। वह तो ज्ञान से दिखाई देता है, बुद्धि से भी नहीं दिखाई देता। बुद्धि से तो यह सब दिखाई देता है। यह तो ज्ञानी के ज्ञान में दिखाई देता है। जैसे-जैसे आपको उसका अनुभव होगा, वैसे-वैसे दिखने लगेगा।

स्पष्ट वेदन होने तक ज्ञान बढ़ता रहता है

प्रश्नकर्ता : आपमें ज्ञान प्रकट होने के बाद ज्ञान प्रकाश उतना ही रहा है या बढ़ता रहता है?

दादाश्री : हमारा तो यह 'अनुभवज्ञान' है। इसमें दो प्रकार का प्रकाश नहीं है। निरंतर एक ही प्रकार का प्रकाश रहता है, हमें आत्मा का स्पष्ट अनुभव है। जब तक आत्मा का स्पष्ट अनुभव नहीं हो जाता, तब तक ज्ञान बढ़ता रहता है। परंतु स्पष्ट अनुभव हो जाए, तब वह ज्ञान पूरा हो जाता है।

ज्ञानी पुरुष अर्थात् आत्मानुभवी पुरुष और संपूर्ण अनुभवी।

प्रश्नकर्ता : अंत में कोई भावक परमाणु ही नहीं रहता न? ज्ञानी में ये 'क' होते हैं?

दादाश्री : हमारी दशा में भावक का परमाणु भी नहीं रहता। हम जिस जगह पर बैठे हैं, उस जगह पर आप आओगे तो आपमें भी भावक नहीं रहेंगे, फिर कोई शोर मचाने वाला अंदर नहीं रहेगा, शुद्धात्मा के स्पष्ट वेदन में आ गए तो 'क' नहीं रहेंगे। यह 'साइन्स' मात्र समझना है। यह ज्ञान तो 'इटसेल्फ' क्रियाकारी है। यह सूक्ष्म बात समझें तभी मोक्ष होगा।

ज्ञान प्रकाश में नहीं होती मूर्च्छा

प्रश्नकर्ता : यह जो शुद्धात्मा है, वह तो ज्ञान स्वरूप है और प्रकाश स्वरूप है न?

दादाश्री : इस तरह का प्रकाश नहीं है।

प्रश्नकर्ता : नहीं। अलग तरह का प्रकाश लेकिन प्रकाश रूपी शुद्ध चेतन...

दादाश्री : यह तो पर प्रकाश है। वह ऐसा प्रकाश नहीं है। प्रकाश यानी क्या है कि किसी भी चीज़ में मूर्च्छा उत्पन्न नहीं होने देता। जगत् की सभी चीज़ें देखता है लेकिन इस जगत् में मूर्च्छा उत्पन्न नहीं होने देता इस जगत् में, ऐसा प्रकाश है। यदि कोई फोर्ट (बोम्बे का एक बाज़ार) में जाए और सभी चीज़ें देखे तो कितनी चीज़ों के प्रति मूर्च्छा होगी?

प्रश्नकर्ता : होती है।

दादाश्री : लेकिन यह प्रकाश मूर्च्छा नहीं होने देता। जेब में अगर कुछ हो, रुपये हों तब भी लेने का मन नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : देखते रहने का मन करता है।

दादाश्री : नहीं, देखने में हर्ज नहीं है। देखना तो आत्मा का धर्म ही है लेकिन उससे उसे मूर्च्छा उत्पन्न नहीं होती। इस प्रकाश की वजह से देखता है फिर भी मूर्च्छा नहीं होती लेकिन यदि यह प्रकाश न हो और देखे तो तुरंत ही मूर्च्छा हो जाती है उसे। साड़ी देखी कि घर आकर उसे याद आती रहती है कि वह वाली साड़ी अच्छी थी न! वह साड़ी में खो जाती है।

इन 'दादा' के पास चीज़ें सभी हैं। फलाना है, व्यापार है, उनके नाम से व्यापार चलता है, उनके नाम के चेक चलते हैं। 'दादा' ने कुछ भी त्याग नहीं दिया है। परंतु नहीं, उन्हें मूर्च्छा किसी भी प्रकार की नहीं है, इसलिए उनका सर्वस्व त्याग है। और साधु महाराज कहते हैं न कि, 'मेरा जन्मस्थल इस गाँव में है', वैसा नहीं बोल सकते। त्यागी हैं फिर भी यह सारा अंदर भरा हुआ होता है, वह मूर्च्छा टूटी नहीं है। और हम जो कहते हैं उसमें कुछ भी त्याग करने जैसा नहीं है। किसका त्याग करने जैसा नहीं है? चीज़ों का त्याग नहीं करना है, मूर्च्छा का त्याग करना है। मूर्च्छा किसे कहते हैं? मोहनीय कर्म को। लोगों ने चीज़ें बहुत त्याग दीं, परंतु चीज़ें तो पूरी हैं ही। क्योंकि चीज़ों के प्रति मूर्च्छा नहीं गई है। स्वरूपज्ञान की प्राप्ति के बाद अब आपमें मूर्च्छा नहीं रही। क्योंकि आप शुद्धात्मा बन गए हो। शुद्धात्मा बन गए इसलिए सर्व मूर्च्छा गई। आपके मोहनीय कर्म का संपूर्ण नाश हो गया है, वर्ना, शुद्धात्मा का *लक्ष* नहीं बैठ पाता। मोहनीय कर्म का छींटा भी हो, तब तक शुद्धात्मा का *लक्ष* नहीं बैठता।

यह ज्ञान मिलने के बाद प्रकाश मिला है इसलिए उसे मूर्च्छा नहीं होती। मूर्च्छा कम हो गई है न?

प्रश्नकर्ता : चीज़ें देखते हैं लेकिन अब उनकी इच्छा नहीं होती।

दादाश्री : हाँ! अर्थात् मूर्च्छा नहीं होती। यह प्रकाश मूर्च्छा नहीं करवाता। अरे, राग-द्वेष वाला सभी कुछ देखते हैं, ऐसे देखते हैं, वैसे देखते हैं। ऐसे उलट-पलटकर देखता है, वैसे उलट-पलटकर देखते हैं लेकिन मूर्च्छा नहीं होती है। आत्मा, आत्मा की जगह पर और वे (चीज़ें) उनकी जगह पर। जबकि (अज्ञान दशा में) मूर्च्छा हो आत्मा पूरा ही उसमें घुस जाता है।

मैं शुद्धात्मा, तो राग-द्वेष नहीं

प्रश्नकर्ता : संसार में राग नहीं रखें तो दुःख होता है और अगर राग रखें तो मोक्ष रुक जाता है।

दादाश्री : ऐसा है न, अब आप वास्तव में क्या हो? रियली स्पीकिंग चंदूभाई हो या शुद्धात्मा?

प्रश्नकर्ता : शुद्धात्मा।

दादाश्री : तो फिर आपमें राग-द्वेष वगैरह कुछ भी नहीं रहे। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', तो राग-द्वेष नहीं हैं और अगर वास्तव में 'चंदूभाई हो' तो आपमें राग-द्वेष हैं।

यदि आप किसी पर गुस्सा हो गए तो मैं आपसे इतना पूछ लूँगा कि, आप चंदूभाई हो या शुद्धात्मा हो? तब यदि आप कहो कि, 'मैं शुद्धात्मा हूँ', तो फिर मुझे आपसे कुछ भी कहने का रहा ही नहीं। अगर गुस्सा करते हो तो मैं समझ जाता हूँ कि जो माल है, वह निकल रहा है। उसे रोकने का हमें अधिकार नहीं हैं। आपको चंदूभाई से ऐसा ज़रूर कहना चाहिए कि, 'ऐसा नहीं होना चाहिए'। चंदूभाई से कहने में हर्ज नहीं है। क्योंकि पड़ोसी है न, फाइल नं-1!

बाकी, लाइन ऑफ डिमार्केशन खिंच चुकी है, यह भाग आपका है और यह भाग इनका। जैसे कोई मकान हो, उसे वाइफ और पति बाँट लेते हैं दोनों की सहमति से। बाँटने के बाद फिर तुरंत ही समझ जाते हैं कि यह मेरा नहीं है। इसी

प्रकार से यह बँटवारा करने के बाद क्या आपका है और क्या उनका, उसमें दखल कैसे की जा सकती है?

जगत् में हैं, शुद्धात्मा और संयोग

आत्मा और संयोग दो ही हैं और उसमें संयोग अनंत हैं, संयोग आत्मा को अपने साथ मिला लेते हैं। वह किस तरह, यह आपको मैं समझाता हूँ। जैसे कि एक हीरा है जो सफेद उजाला देता है, प्रकाश में उसमें से सफेद किरणें निकलती हैं। अब उसके नीचे लाल कपड़ा रखा हो तो पूरा हीरा लाल दिखता है और हरा कपड़ा रखा हो तो हीरा हरा दिखता है और प्रकाश भी हरा निकलता है। आत्मा भी ऐसा ही है, लेकिन जैसे संयोग आते हैं वैसा हो जाता है। क्रोध आए तब गरम-गरम हो जाता है। वास्तव में तो 'शुद्धात्मा' खुद तो कभी भी बिगड़ा ही नहीं है। तेल और पानी को मिलाकर चाहे जितना हिलाएँ, फिर भी तेल और पानी कभी भी एक नहीं होते हैं। उसी प्रकार आत्मा भी कभी बिगड़ा ही नहीं। अनंत जन्मों में आत्मा कटा नहीं है, कुचला नहीं गया है, साँप में गया या बिल्ली में गया या भले ही किसी भी योनि में गया लेकिन खुद अंश मात्र भी नहीं बिगड़ा है, सिर्फ अलग-अलग आकार-प्रकार (रूप-रंग) ही बदले हैं।

मैं एक शाश्वत शुद्धात्मा हूँ

'ये संयोग अच्छे हैं और ये खराब हैं' इसी से संसार कायम है, लेकिन यदि 'ये सारे संयोग दु:खदायी हैं', ऐसा कहा तो फिर हो गया मोक्षमार्गी! यही वीतराग भगवान का साइन्स है, भगवान महावीर कितने बड़े साइन्टिस्ट थे! वीतराग तो जानते थे कि जगत् मात्र संयोगों से उत्पन्न हो गया है। लोगों ने संयोगों को अनुकूल और प्रतिकूल माना और उन पर राग-द्वेष किए, जबकि भगवान ने तो दोनों को ही प्रतिकूल माना और वे मुक्त हो गए।

'एगो मे शाषओ अप्पा, नाण दंश्शण संज्जूओ।'

मैं एक शाश्वत आत्मा हूँ, ज्ञान-दर्शन वाला ऐसा शाश्वत शुद्धात्मा हूँ, मैं सनातन हूँ, सिर्फ सत् ही हूँ।

'शेषा मे बाहिराभावा, सव्वे संयोग लख्खणा।'

ये जो शेष बचे हैं वे सारे बाहरी भाव हैं। उन भावों के लक्षण क्या हैं? वे संयोग लक्षण वाले हैं। 'बाहिराभावा' कौन से? संयोग लक्षण, मतलब टेढ़ा विचार, वह संयोग, शादी करने के विचार आएँ, वे संयोग, विधवा हो जाने का विचार आए, वह संयोग। ये सभी 'बाहिराभावा' कहलाते हैं और ये सभी संयोग लक्षण वाले हैं। इन सभी के लक्षण संयोग स्वरूप हैं। जिनका वियोग हो जाना है, वे सभी संयोग हैं, उन्हें भूल से बुला लिए थे इसलिए वे आए हैं।

'संजोगमूला जीवेण पत्ता दु:खम् परम्परा,
तम्हा संजोग संबंधम् सव्वम् तीवीहेण वोसरियामी।'

सभी संयोग जीव के दु:खों की परंपरा के मूल में हैं। उन सभी संयोगों को 'दादा भगवान' को वीतराग को अर्पण करता हूँ, यानी कि समर्पण करता हूँ, और इसलिए हम उनके मालिक नहीं रहे। ये संयोग कितने सारे हैं? अनंत हैं। इन अनंत संयोगों को, एक के बाद एक कब छोड़ पाएँगे? इसके बजाय तो उन सभी संयोगों को 'दादा' को अर्पण कर दिए, तो हम छूट गए!

आत्मा में अनंत शक्ति हैं, वह इतनी अधिक हैं कि एक घंटे में ही करोड़ संयोगों को एकत्र कर लेती है, उसी तरह एक ही घंटे में करोड़ों संयोगों का *निकाल* भी कर सकती है। लेकिन *निकाल* करने का अधिकार किसे हैं? 'ज्ञानी पुरुष' को!

भोजनालय-शौचालय, *पूरण-गलन* और शुद्धात्मा

जगत् में 'शुद्धात्मा' और 'संयोग', दो ही चीज़ें हैं। बाहर जो मिलते हैं वे संयोग हैं, हवा ठंडी लगती है। विचार आएँ, वे संयोग, लेकिन बुद्धि से 'यह खराब है और यह अच्छा है', ऐसा दिखता है, और इसलिए राग-द्वेष करता रहता है। ज्ञान क्या कहता है कि, 'दोनों संयोग एक जैसे ही हैं। संयोगों से तू खुद मुक्त ही है, तो फिर दखल क्यों करता है?'

और हम तो साफ-साफ कह देते हैं न, कि शुद्धात्मा और *पूरण-गलन*। क्रेडिट एन्ड डेबिट, क्रेडिट एन्ड डेबिट। और कुछ भी नहीं हो रहा है। बैंक में रखी हुई किसी की भी रकम, स्थिर रही है? आएगी और जाएगी। *पूरण* और *गलन,* इंसान दो खाते रखता हैं। (बैंक में पैसा) लेने जाए तो वह *गलन* है, रखने जाए तो वह *पूरण* है।

पिछले जन्म में *पूरण* किया था, क्रेडिट किया था, वही इस जन्म में डेबिट होता रहता है। अब अभी नया क्रेडिट करना शुरू किया, वह अगले जन्म में काम आएगा। बैंक में रखी हुई रकम जैसा है सब। पूरी ज़िंदगी खाते रहो। जैसा *पूरण* करता है वैसा ही *गलन* आता है।

यह नफा-नुकसान क्या है? *पूरण-गलन*। और आत्मा परमानेन्ट वस्तु है और ये सब *पूरण-गलन* वाली चीज़ें हैं और (जब) यह *पूरण* होता है तब 'बढ़ गया, बढ़ गया' कह कर राग करता है और (जब) *गलन* होता है तब 'चला गया' कह कर द्वेष करता है और संसार सर्जित करता है। खुद ही परमात्मा है लेकिन नासमझी से इस *पूरण-गलन* वाले संसार में मार खाता है।

अब संक्षेप में, इन शॉर्ट दृष्टि में आपको समझ में आया? 'कम टू द शॉर्ट', नहीं तो इसका तो अंत ही नहीं आएगा। इस जगत् में पाँच चीज़ें हैं। इस देह में तीन हैं : *पूरण, गलन* और शुद्धात्मा और बाहर दो ही चीज़ें हैं : भोजनालय और शौचालय। भोजनालय, भोगने योग्य है और शौचालय, छोड़ने योग्य है।

भोजनालय-शौचालय, *पूरण-गलन* और शुद्धात्मा! इसके अलावा ज्ञानी को इस संसार में कुछ दिखता ही नहीं। भोजनालय यानी भोगने की, इस्तेमाल करने की चीज़, शौचालय यानी भोगने के बाद छोड़ देने की चीज़। शेष रहा, वह *पूरण-गलन* और शुद्धात्मा।

यानी कि पूरा जगत् इसमें आ गया, इन पाँच शब्दों में। और फिर इन दो शब्दों में सबकुछ आ गया कि शुद्धात्मा और संयोग दो ही हैं। (जहाँ) लोगों को गुह्य बात की भी समझ नहीं है, वहाँ पर गुह्यतर बात कैसे समझ में आ सकती है? और फिर हमारी बात तो गुह्यतम है।

जिस भाव से तू *पूरण* करेगा, उसी भाव से *गलन* होगा। वह तो पहले जैसा बोला था न, उस समय परमाणु खिंचे थे और वे सभी परमाणु वैसे ही हो गए। अतः उस घड़ी (जब) परमाणु अंदर दाखिल हुए, तब वे पुद् कहलाते

हैं और फिर जब वे परमाणु फल देकर *गलन* होते हैं तब गल कहलाते हैं। भरते हैं और फिर *गलन* होता है फल देकर। कर्म बाँधते समय उसका *पूरण* होता है कर्म छोड़ते समय *गलन* होता है। अत: उसे *पुद्गल* कहा जाता है। जब *गलन* होता है तब उसे '*निर्जरा*' कहते हैं और (जब) *पूरण* होता है तब उसे 'बंध' कहते हैं।

हम किसी दुर्जन को यहाँ पर बुला लाएँ तो उसमें दुर्जनता का *पूरण* हो रहा है। उसे सज्जनता के सागर में रख दिया जाए तब भी दुर्जनता का ही *पूरण* होता रहेगा और सज्जनता का *गलन* होता ही रहेगा। लेकिन जिसमें दुर्जनता का *गलन* हो रहा है, उसे सज्जन बना सकते हैं। जो माल भरा हुआ है, उसी का *गलन* होता है। नीम मीठा पानी पीता है फिर भी हर पत्ते में कड़वाहट आ ही जाती है। कुल्हाड़ी से काटो तो कुल्हाड़ी में भी कड़वी गंध आती है, एक छोटी सी निंबोली में भी कितनी कड़वाहट भरी है, वह तो देखो! इस *पुद्गल* की करामात तो देखो! जो कुछ भी उपचार करो, मीठा पानी डालो, लेकिन उसकी कड़वाहट बढ़ती ही जाएगी। इस दुनिया में एक भी चीज़ ऐसी नहीं हैं, जिसका *पूरण-गलन* नहीं होता। *पूरण-गलन* स्वभाव ही है, इट इज़ बट नैचुरल।

पूरण-गलन माइनस करने पर मिले शुद्धात्मा

प्रश्नकर्ता : सर्व प्रथम स्पष्टता हुई, *पुद्गल* और *पूरण-गलन* की। इस *पूरण-गलन* के बारे में आपने जो स्पष्टता की, तो मुझे नहीं लगता कि भगवान महावीर के बाद किसी ने इस बात को समझा होगा?

दादाश्री : नहीं! लेकिन ज्ञानी के बिना कैसे समझ सकते हैं लोग? लोगों में इसे समझने की क्षमता ही नहीं है न। लोग *पुद्गल* ही कहते रहते हैं। *पुद्गल* यानी क्या? तो कहते हैं, 'शरीर।' अर्थात् शरीर का दूसरा नाम *पुद्गल*। इसकी खोज करने के लिए मैंने बीस सालों तक बहुत टाइम लगाया कि ये *पुद्गल* और ये सारे जो शब्द हैं न, यह *पुद्गल,* किस प्रकार से भगवान मिल सकते हैं वगैरह सब।

यह *पुद्गल* शब्द बहुत बड़ी खोज है। अर्थात् यह *पूरण-गलन,* यदि सिर्फ इतना ही समझ में आ जाए न, तो बहुत हो गया। यह *पूरण-गलन* है और तू शुद्धात्मा। तो अपने आप ही देख ले, क्या-क्या *पूरण-गलन* होता है और उसे माइनस कर दे, तो तू शुद्धात्मा ही है। अब इतनी समझ होती ही नहीं है न लोगों में इसलिए वापस ज्ञानी के पास आना पड़ता है। इस प्रकार सिखाने से, इस प्रकार बोलने से, वह समझ ज़रूर जाता है कि, 'ठीक है, आपकी बात करेक्ट है', लेकिन फिर अमल में लाना मुश्किल हो जाता है न!

देख-देखकर होता जाएगा *पुद्गल* शुद्ध

हम अपने आप को शुद्धात्मा कहते हैं न, तो यह बाहर वाला जो भौतिक भाग है न, जिसे '*पुद्गल*' कहते हैं, तो यह *पुद्गल* क्या कहता है कि 'हमारा क्या? अब, आप शुद्धात्मा बन गए लेकिन मुक्त नहीं हो सकते। जब तक हमारा निबेड़ा नहीं आएगा तब तक आप मुक्त नहीं हो पाओगे।' वह क्या कहता है कि, 'जब तक हमें अपनी मूल स्थिति में नहीं ला दोगे तब तक हम आपको छोड़ेंगे नहीं। क्योंकि मेरी मूल स्थिति को बिगाड़ने वाले आप हो इसलिए आप ही हमें हमारी मूल स्थिति में ला दो!'

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह तो अंदर हमें कहता है कि ये चमड़ी है, खून है, हड्डियाँ हैं, माँस है, ये पंचभूत से बने हैं। उनका और हमारा क्या लेना-देना? उनका क्या करना है?

दादाश्री : नहीं, नहीं, नहीं। चंदूभाई जीवित हैं। आप शुद्धात्मा हो और चंदूभाई जीवित हैं। यह रक्त, माँस और पीप का पुतला नहीं है, यह जीवित है। निबेड़ा लाना पड़ेगा इसका तो!

प्रश्नकर्ता : हम किसी का बुरा नहीं करते, व्यवस्थित के अनुसार होता रहता है।

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं चलेगा। यह क्या कहता है कि 'आपने हमें बिगाड़ा है। आपने हमें विकृत बनाया है। हम, जो साफ *पुद्गल* थे, प्योर थे, शुद्ध थे, उसमें से हमें अशुद्ध बनाया, इम्प्योर बनाया, विकृत बनाया।' 'आपने' भाव किए, तभी विकृत हुए न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, *पुद्गल* का, जड़ का भला स्वकृति क्या और विकृति क्या?

दादाश्री : अंदर पावर चेतन है न! आप अलग हो और यह चेतन भाव वाला *(पुद्गल)* अलग है। *पुद्गल* में पावर चेतन है, वास्तविक चेतन नहीं है।

प्रश्नकर्ता : *पुद्गल* को किसने बिगाड़ा?

दादाश्री : 'हमने' जो भाव किए, वे ही भावकर्म हैं। उसी से *पुद्गल* उत्पन्न हुआ। यदि भावकर्म नहीं हुए होते तो यह *पुद्गल* उत्पन्न नहीं होता। *पुद्गल* को कोई लेना-देना नहीं है। वह तो वीतराग ही है बेचारा। 'आप' भाव करते हो तो तुरंत ही उसका परिणाम आ जाता है। इसलिए जो परमाणु अशुद्ध हुए हैं, उन्हें शुद्धता देखकर शुद्ध करना है, और कुछ भी नहीं है।

अतः जितने परमाणु डिस्चार्ज होने बाकी हैं, उतने अशुद्ध रहे हैं, उन्हें भी अगर आप अभी देख-देखकर जाने दोगे तो वे शुद्ध होकर चले जाएँगे।

ज्ञानी रहते हैं होम डिपार्टमेन्ट में

हमारा तप हमें घड़ीभर के लिए भी संसार में नहीं रहने देता। ऐसा होता है हमारा तप। तप अर्थात् होम डिपार्टमेन्ट में से फॉरेन में कभी जाए ही नहीं। फॉरेन में जाने के लिए ज़रा आगे बढ़े उससे पहले तो अंदर से शोर मचता है। मतलब होम और फॉरेन के बीच का जो संधिस्थान है, वहाँ पर हमारा तप उत्पन्न होता है। पर-परिणति और स्व-परिणति, ये शब्द आपने सुने हैं न? एक सेकन्ड के लिए भी हमारी पर-परिणति नहीं होती।

भगवान ने ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप, मोक्ष के चार *पाये* (आधार स्तंभ) बताए थे। इन चारों को मनुष्य यहाँ पाँच इन्द्रियों से देख पाए, ऐसा नहीं है। भगवान ने मोक्ष के चार *पाये* (आधार स्तंभ) बताए थे, वे पाँच इन्द्रियों से देख पाए, ऐसा नहीं है। जो तप किसी को भी नहीं दिखाई देता और फिर भी तप होता है, वही मोक्ष में ले जाता है। जो दिखाई देता है वह तप चर्तुगति में ले जाता है।

प्रश्नकर्ता : दादाजी, कुछ समझ में नहीं आया, ज़रा फिर से बताइए। और थोड़ा विस्तार से बताइए। इसका रहस्य खोलिए ज़रा।

दादाश्री : ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप ये चार *पाये* जिनके पास होते हैं, उनका बाहर कुछ भी नहीं दिखाई देता, ज्ञान भी नहीं दिखाई देता, दर्शन भी नहीं दिखाई देता, चारित्र नहीं दिखाई

देता और तप भी नहीं दिखाई देता। बाहर यों पाँच इन्द्रियों से नहीं दिखाई देता, वह तो उनके परिचय में रहने से समझ में आता है। क्योंकि, सबकुछ आंतरिक होता है। और बाह्य ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप, वह संसार का कारण है।

आत्मा-अनात्मा के संधिस्थल (जोड़) पर ज्ञानी का तप

हम निरंतर चौबीसों घंटे तप में ही रहते हैं। लेकिन हमारा तप अदीठ तप होता है। जो तप दिखाई देता है, उससे पुण्य बंधता है। जो तप दूसरे देख सकते हैं, उससे पुण्य बंधता है। जो तप दिखाई नहीं दे, उससे मोक्ष होता है। यानी कि हमारा अदीठ तप होता है।

प्रश्नकर्ता : अदीठ तप कैसा होता है?

दादाश्री : दिखाई नहीं दे, ऐसा। किसीको भी नहीं दिखता, ऐसा। हमारा तप जो कि आत्मा और अनात्मा के संधिस्थान पर होता है, जो (हमें) एकाकार नहीं होने देता। तन्मयाकार नहीं होने देता, उस जोड़ पर होता है। तब फिर अंदर का यह तप लोगों को बाहर कैसे दिखाई देगा? बाहर तो, उदय के मुताबिक सबकुछ होता है, किन्तु अंदर के तप को अदीठ तप कहा जाता है। वह होम डिपार्टमेन्ट में से फॉरेन में नहीं जाने देता। फॉरेन में सुपरफ्लुअस (सतही तौर पर) रखता है, सुपरफ्लुअस। फॉरेन में तो, उसका जो उदय कर्म है उस उदयकर्म के अधीन रहता है, उसमें खुद दख़ल नहीं करता। मेरा किसी भी प्रकार का तप आपको दिखाई देता है?

हम निरंतर तप में रहते हैं। एक क्षण के लिए भी तप से बाहर नहीं रहते। अब, तप यानी, आपको तो क्या तप करना पड़ता है? मेरा तप वह अलग प्रकार का होता है। मेरा तप मतलब फॉरेन में (उपयोग) जाता ही नहीं, उपयोग फॉरेन में जाता ही नहीं है, उपयोग होम में ही रहता है। आपको समझ में आया न? मेरा तप इस स्तर का होता है।

स्वस्थ-अस्वस्थ को जानने वाला, शुद्धात्मा

प्रश्नकर्ता : अवस्था में अस्वस्थ रहता है, उसे खुद देख सकता है और जान सकता है फिर भी स्वस्थ नहीं रह पाता, उतना बुद्धि का आवरण अधिक कहलाएगा?

दादाश्री : नहीं, वहाँ पर क्या न्याय है कि जो देखता है, दादा ने जो आत्मा दिया है, 'शुद्धात्मा', वही इन सबको देखता है। 'उस' रूप से 'हम' रहें तो कुछ भी झंझट नहीं है। नहीं तो स्वस्थ और अस्वस्थ देखने जाएँ तो उसका अंत ही नहीं आएगा।

प्रश्नकर्ता : उसकी चाबी कौन-सी?

दादाश्री : स्वस्थ हो जाए या अस्वस्थ, दोनों का जानकार शुद्धात्मा है। अस्वस्थ हो जाता है इसलिए खुद उसमें, 'फ़ॉरेन' में हाथ डालता है। स्वस्थ हो जाओ या अस्वस्थ हो जाओ, आपको तो 'जानने' से काम है। ये सब पौद्गलिक अवस्थाएँ हैं और पौद्गलिक अवस्था को जाने, वह 'शुद्धात्मा' कहलाता है। पौद्गलिक अर्थात् *पूरण-गलन* हो चुकी! जो अस्वस्थता आपको आती है वह *पूरण* (चार्ज होना, भरना) हो चुकी है, तभी आज आ रही है, वह अभी आकर *गलन* (डिस्चार्ज होना, खाली होना) हो जाएगी।

'फ़ॉरेन' में हाथ डाला तो जले बगैर रहेगा

ही नहीं। हम 'फ़ॉरेन' में हाथ डालते ही नहीं। क्योंकि यों भी जो फल मिलना है, वह तो मिलेगा ही। और ऊपर से उसने हाथ डाला उसका 'डबल' फल मिलेगा। दो नुकसान उठाता है। हमें एक ही नुकसान उठाना है। 'चंदूभाई' अस्वस्थ हैं, वैसा 'आपको' जानते रहना है, वह पंद्रह मिनिट बाद खत्म हो जाएगा। 'देखते' रहोगे तो दो नुकसान नहीं होंगे।

प्रश्नकर्ता : अस्वस्थता का समय जितना अधिक खिंचेगा, उतना अधिक आवरण कहा जाएगा?

दादाश्री : हाँ, जितना आवरण उतना ज्यादा अस्वस्थ रहेगा, परंतु 'आप' शुद्धात्मा के तौर पर देखते रहोगे तो वह चाहे जितना आवरण हो फिर भी वह तेज़ी से खत्म हो जाएगा। उसका हल आ जाएगा और उसमें खुद हाथ डालने गया तो मारने से झंझट खड़ी होगी।

फॉरेन में से आ जाओ शुद्धात्मा के स्ट्रोंग रूम में

अब, आप जहाँ सोओ, वही पर आनंद। ठंड में यदि छत पर सोना पड़े तब भी वहाँ आनंद। आप अपनी तरह से अंदर शुद्धात्मा की गुफा में घुस जाओगे न, तो ठंड नहीं लगेगी और सेठ को बंगले में भी ठंड लगती रहेगी। क्योंकि वे बाहर के बाहर ही भटकते रहते हैं। अरे, तेरे रूम में जा न, आराम से! लेकिन रूम देखा ही नहीं, तो जाए कहाँ? और आप तो 'रूम' में सो जाते हो फिर बाहर भले ही बरसात हो या ठंड पड़े!

बड़ा तूफान आ जाए तो डिगोगे नहीं न अब?!

प्रश्नकर्ता : ज़रा भी नहीं।

दादाश्री : आपके पास शुद्धात्मा का स्ट्रोंग रूम है, वहाँ कोई नाम ही न दे, ऐसा स्ट्रोंग रूम है यह तो। अपने होम डिपार्टमेन्ट में घुस जाना है, यह तो सब फॉरेन है। फॉरेन में भले ही (कोई) चिल्लाएँ, आप होम के स्ट्रोंग रूम में घुस गए, उसके बाद कोई नाम देने वाला है ही नहीं। अब अनुभव होगा न! होम में बैठने के बाद ही अनुभव की शुरुआत होती है न! तब तक अभी भी फॉरेन में ही चले जाते हैं। अभी भी शुद्धात्मा होने के बाद भी अंदर नहीं जाते, बाहर ही चले जाते हो। क्योंकि अभ्यास नहीं है अंदर जाने का। अनअभ्यास है न? इसलिए पहले उसका थोड़ा अभ्यास करना चाहिए न?

अभी तो, अंदर यदि तरह-तरह के तूफान आएँ तो वहाँ भी उनका स्थिरतापूर्वक हल लाना। तूफान किस-किस चीज़ के आएँगे? पूर्वकर्म के। मतलब जो भरा हुआ माल है। जो *पूरण* हो चुका है, उसका *गलन* होते समय तूफान आए तो उस समय आपको स्थिरता रखनी चाहिए कि तूफान आया है। आप शुद्धात्मा, आपको होम डिपार्टमेन्ट में बैठकर देखते रहना है।

क्योंकि आपमें आत्मा अलग बरतता है, हन्ड्रेड परसेन्ट। और *पुद्गल* अलग बरतता है, और दशा शुद्धात्मा की दी हुई है। अब, इसका कुछ बिगड़ेगा नहीं, कभी-भी नहीं बिगड़ेगा। आप जान-बूझकर उखाड़ना चाहो तो उखड़ जाएगा, वर्ना नहीं उखड़ेगा। समझ कम-ज़्यादा हो तो उसमें दिक्कत नहीं है। समझने की ज़रूरत ही नहीं है। ज्ञानी पुरुष की कृपा का ही फल है। यह अक्रम विज्ञान है अर्थात् आपको कुछ करना नहीं है।

चंदूलाल प्रयोग, शुद्धात्मा प्रयोगी

प्रयोग और प्रयोगी दोनों अलग होते हैं या एक होते हैं? 'चंदूलाल', वह प्रयोग है और 'खुद' शुद्धात्मा है, वह प्रयोगी है। अब प्रयोग को ही प्रयोगी मान बैठे हैं। प्रयोग में चीज़ें निकालनी पड़ती हैं, डालनी पड़ती हैं, जबकि प्रयोगी में *पूरण-गलन* (चार्ज होना-डिस्चार्ज होना) नहीं होता। इस 'प्रयोग' में खाने-पीने का डालना पड़ता है और संडास-बाथरूम में *गलन* करना पड़ता है।

''पोते ज प्रयोगी छे, प्रयोगीनी मूर्छनामां''

– नवनीत

प्रयोगी खुद ही प्रयोगों की मूर्च्छा में पड़ा हुआ है, इसलिए खुद के स्वरूप का भान भूल गया। अभी अगर कोई प्रयोग चल रहा हो, उबलता हुआ पानी हो, उसमें हाथ डालने जाए तो क्या होगा? इसमें पता चल जाता है और आत्मा के संदर्भ में पता ही नहीं चलता इसलिए हाथ डालता ही रहता है। फिर भिन्नता नहीं रह पाती। 'मैं जुदा हूँ', इस प्रकार से बरतता ही नहीं है न फिर?!

प्रश्नकर्ता : इसमें मूल प्रयोगी कौन है?

दादाश्री : आत्मा ही प्रयोगी है। यह तो आपको समझाने के लिए शब्द रखा है। यह देह प्रयोग है और जो उससे अलग है, वह आत्मा है, इसलिए प्रयोग में दख़लंदाज़ी मत करना।

'शुद्धात्मा' कहते ही परमाणु दाखिल नहीं होते

तो जब तक, 'मैं चंदूभाई हूँ', ऐसा था तब तक पूरे दिन धर्म क्रिया करने के बावजूद भी वे परमाणु अंदर दाखिल होते रहते थे, *पूरण* होते रहते थे। क्योंकि 'अरे भई परमाणु, आप क्यों मेरे घर में घुस रहे हो?' तब वे (परमाणु) कहते हैं कि, ''आप खुद ही *पुद्गल* हो। आप यदि आत्मा हो तो हम आ ही नहीं सकेंगे। हाँ! आप कहते हो, 'मैं चंदूभाई हूँ', इसलिए हम आते हैं।'' अब, 'मैं शुद्धात्मा हूँ' कहने से ये सारे परमाणु अंदर दाखिल नहीं होते। चाहे कोई भी क्रिया करो लेकिन परमाणु दाखिल नहीं होंगे और (यदि) परमाणु दाखिल हो जाएँ तो *पुद्गल पूरण* होता ही रहेगा और उसका वापस *गलन* होगा।

लेकिन जिन्हें आत्मा प्राप्त हो गया है, वहाँ पर परमाणु दाखिल हो ही नहीं सकते। फिर फल देने को कहाँ रहा? कड़वा भी नहीं और मीठा भी नहीं। खुद के सुख में रहना है। इस प्रकार कड़वे-मीठे, खुद का सुख नहीं आने देते और कड़वे-मीठे में ही रखते हैं। जबकि आत्मा का सुख खुद का स्वयं सुख है, जिसकी तृप्ति रहती है, निरंतर तृप्ति रहती है। खुद का सुख ऐसा है कि अन्य कोई चीज़ न हो, तब भी रहता है।

खुद असंग, ऐसा है शुद्धात्मा

आपको आत्मा दिया है। आपको खुद का स्वरूप, सर्व संग से रहित, सिर्फ आत्मा दिया है। उसे किसी संग का स्पर्श नहीं हो सकता, और यदि संग का स्पर्श हो पाता तो आत्मा कभी भी आत्मवत् नहीं हो पाता। उस संग से असंग बनाने के बाद ही तो आपमें यह ज्ञान परिणमित हुआ है। वर्ना, प्राप्ति नहीं हो पाती न! अब निश्चय से असंग हो, अर्थात् असंग हो गए हो, निश्चय से। व्यवहार (क्रमिक) में लोग भी कहते हैं, लेकिन वह नहीं चलेगा। आपको तो असंग

स्वरूप का *लक्ष* रहता है खुद ही। *लक्ष* अर्थात् क्या? आत्मध्यान कहा जाता है! पहले 'मैं चंदूभाई हूँ', ऐसा ध्यान था। अब, 'शुद्धात्मा हूँ', ऐसा ध्यान हुआ। 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ध्यान में, काफी कुछ भाग शुद्धात्मा के ध्यान में ही जाता है। बहुत फाइलें होने पर ज़रा सा चूक जाते हो लेकिन फिर भी ध्यान में क्या है? शुद्धात्मा। वह शुक्लध्यान है असंग स्वरूप है। इससे बड़ा पद वर्ल्ड में कोई नहीं है। यह तो अविरति पद है। इसलिए इतना ही संभाल लेना है कि हम अविरति पद में आ गए हैं, अत: इन सभी का *निकाल* तो करना पड़ेगा न? जितनी हमारी आज्ञा में रहोगे उतना हल हो जाएगा।

असंग अर्थात् 'मैं शुद्धात्मा' के अलावा अन्य कुछ नहीं। खुद असंग, ऐसा शुद्धात्मा है।

सबसे बड़ा विज़न, जीवमात्र शुद्धात्मा

प्रश्नकर्ता : आत्मज्ञान प्राप्त करने के बाद, मैं संपूर्ण रूप से निर्विकारी (असंग) हो गया या मेरा (भरा हुआ) माल संपूर्ण रूप से खाली हो गया, उसकी क्या निशानी है?

दादाश्री : निशानी तो, निरंतर समाधि रहे, आपको उपाधि में भी समाधि रहे।

प्रश्नकर्ता : वह तो अभी भी थोड़ी-बहुत तो रहती ही है?

दादाश्री : नहीं! लेकिन संपूर्ण रूप से रहती है तो वही निशानी है और कुछ नहीं। निरंतर जागृति, वही संपूर्ण है।

प्रश्नकर्ता : वह उपाधि तो यों चली गई। हम चिंतामुक्त हो गए, आपने बना दिया। लेकिन फिर भी उसकी कुछ तो निशानी होगी न। हमें ऐसा कुछ विज़न (दृष्टि) प्राप्त हो कि इस अनुसार ऐसा कुछ हो तो हम पूर्ण रूप से जाग्रत हो चुके हैं?

दादाश्री : विज़न तो सबसे बड़ा प्राप्त हो गया है। विज़न तो 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह विज़न व औरों में शुद्धात्मा दिखाई देते हैं, वह विज़न। अन्य विज़न काम के नहीं हैं न! बाकी तो सारे विज़न बेकार हैं, वे नाटकीय विज़न कहलाते हैं।

जीवमात्र शुद्धात्मा है, अव्यक्त भाव से सभी शुद्धात्मा ही है। लेकिन शुद्धात्मा का प्रकाश व्यक्त होना चाहिए। जो व्यक्त हुआ, वह प्रकाश है। वह प्रकाश स्तंभ का काम कर सकता है। ओब्ज़र्वेटरी का काम कर सकता है।

प्रश्नकर्ता : तो वह विशुद्ध है?

दादाश्री : विशुद्ध ही है। सभी जीव विशुद्ध हैं। लेकिन विशुद्धता का भान नहीं है। लोगों को वह भान हो जाए तो वह प्रकाश स्तंभ का काम कर सकेंगे। वह दूसरों को प्रकाश दे सकेगा। अत: ये ज्ञानी हमें भान में लाते हैं। अन्यथा बेभानपन में ही बर्तते हैं। लोगों ने जो बताया, उसने उस ज्ञान को पक्का करके खुद स्वीकार कर लिया है। अत: लोगों की संज्ञा से चले हैं लोग, ज्ञानी की संज्ञा से नहीं चले। यदि ज्ञानी की संज्ञा से चले होते तो छुटकारा हो जाता।

ज्ञान के बाद स्वरूप की रमणता

ज्ञान प्राप्त होने के बाद, 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह भाव उत्पन्न होने के बाद ये सारे कॉज़ेज़ बंद हो गए। भोक्तापन बंद हो गया और खुद के स्वभाव का, स्वरूप का भोक्ता बन गया। पूरा जगत् पर-रमणता में है, *पुद्गल* भोक्ता में है और

स्वरूप वाले स्व-रमणता में, स्वरूप के भोक्ता हैं। स्वरूप के भोक्ता बन जाने पर अन्य कुछ खराब प्रवेश ही नहीं करेगा न! स्व-रमणता उत्पन्न हो गई, वही मोक्ष है।

प्रश्नकर्ता : आपके अक्रम ज्ञान द्वारा जो आत्मरमणता शुरू हो जाती है, उस ज्ञान के बारे बताइए?

दादाश्री : जो ज्ञान अनात्मा के साथ एकाकार नहीं होने देता, परभाव में, पर-रमणता में एकाकार नहीं होने देता, वही ज्ञान है और वही आत्मा है। होम डिपार्टमेन्ट में ही रखता है, फॉरेन में घुसने ही नहीं देता।

ज्ञान खुद ही मुक्ति है, मोक्ष में रखता है, बंधन नहीं होने देता।

यह जगत् जो है, उसे सत्य मानना और उसीमें रमणता करना, वह अशुद्ध चित्त है। और इस जगत् का जो ज्ञान-दर्शन है, वह यथार्थ नहीं है, ऐसा मानना और यथार्थ वस्तु में रमणता रखना, उसे कहते हैं शुद्ध चित्त। शुद्ध चित्त ही शुद्धात्मा है।

इसलिए वीतरागों ने कहा था, 'अनंत परमाणुओं में से जब चित्त स्वरूप में आएगा तब हल आ जाएगा।' अत: रमणता किसकी होनी चाहिए? स्वरूप की। हम आपके साथ बात करते समय स्वरूप की रमणता में रहते हैं। सोते, खाते-पीते, चलते समय स्वरूप की रमणता में ही रहते हैं!

शुद्धात्मा की रमणता, वही मुख्य है

शुद्धात्मा की रमणता ही मुख्य चीज़ है। अभी तक *पुद्गल* की ही रमणता थी। यह सब *पुद्गल* ही कहलाता है न! जिस भी रूप में कहो, इस रूप में कहो या उस रूप में कहो, लेकिन हर रूप में *पुद्गल* ही है। मार्ग में जितने भी साधन हैं, वे सब पौद्गलिक रमणता में हैं!

पुद्गल रमणता को ही संसार कहते हैं। उससे कुछ नहीं बदल पाएगा। तू चाहे कोई भी हो, उससे भगवान को क्या लेना-देना? अगर भगवान से पूछा जाए कि 'रमणता क्या है?' तब कहेंगे, '*पुद्गल* रमणता।' तब अगर कहे कि 'साहब, सभी शास्त्रों के जानकार हैं।' (तब भगवान कहेंगे) 'तो हमें हर्ज नहीं है, उसने जो जाना है उसका फल मिलेगा। लेकिन रमणता किस में है?' तब कहते हैं, '*पुद्गल* रमणता।'

'मैं चंदूभाई हूँ और यह सब मेरा है', इसका पति और इसका पिता और इसका मामा।' शास्त्र भी *पुद्गल* कहलाते हैं। जो साधु-महाराज शास्त्रों से खेलते रहते हैं, वे भी *पुद्गल* के खिलौने ही कहलाते हैं। तब तक कभी भी आत्मरमणता उत्पन्न नहीं हो सकती।

पुद्गल से विराम प्राप्त करने को कहा जाता है, विरति। पूरा जगत् क्रियाओं में ही पड़ा है लेकिन सिर्फ, दृष्टि की ही ज़रूरत है। सभी पर-रमणता में ही हैं। कोई भी स्व-रमणता में नहीं है। शास्त्रों में रमणता करते हैं, शिष्यों में रमणता करते हैं, फोटो में रमणता करते हैं, वे सारी संसार रमणता ही हैं। एक सेकन्ड भी आत्मरमणता चख ले तो मुक्ति हो जाएगी। ज्ञानी के अलावा कोई आत्मरमणता में भी नहीं ला सकता।

आज्ञा करती है स्थिर स्व-रमणता में

आत्मा की रमणता उत्पन्न होने के बाद कोई भी काम बाकी नहीं रहता। हम आपको आत्मा का भान करा देते हैं, उसकी रमणता

आपको उत्पन्न नहीं करनी पड़ती। हम भीतर ऐसा कुछ रख देते हैं जिससे कि आपमें रमणता उत्पन्न हो जाती है, अपने आप। आपको कुछ करना नहीं है। सहज ही है यह। यदि आपके लिए कुछ भी करना बाकी रहता तो वह पक्का हो जाता कि ज्ञानी पुरुष नहीं मिले हैं। ज्ञानी पुरुष अर्थात् जो कुछ भी करने का बाकी नहीं रखते। लिफ्ट में बैठाकर मोक्ष में ले जाते हैं और फिर ज्ञानी पुरुष ही चलाते हैं। हमें तो उनकी आज्ञापूर्वक बैठे रहना है। यह स्व-रमणता होने के बाद धर्म क्या करना है? तो उन्होंने जो आज्ञाएँ दी हैं, बस उन्हीं आज्ञाओं में रहना है। आज्ञा, वह प्रोटेक्शन है। जिन्होंने स्व-रमणता प्राप्त की है, उनके लिए प्रोटेक्शन क्या है? तो कहते हैं, आज्ञा! इसलिए हम ये पाँच आज्ञा देते हैं।

एक बार आत्मा जानने के बाद इन पाँच आज्ञाओं का पालन करे, अर्थात् उस समय वह आत्मरमणता में रहना सीख गया। फिर वह रमणता धीरे-धीरे स्थिर होती जाती है और यह *पुद्गल* रमणता बंद होती जाती है। उसके बाद जब इस *पुद्गल* की रमणता से मुक्त हो जाए, तब उसे निरंतर मुक्त कहा जाएगा, वह 'परमानंद' दशा है। पर-रमणता से मुक्त हुआ। मुक्त ही है, यहाँ बैठे हुए भी मुक्त।

नापसंद (चीज़ों) की रमणता के ज्ञाता, वह स्व-रमणता

(स्वरूप का यह ज्ञान प्राप्त होने के बाद) मोक्ष तो हो ही गया है लेकिन अब जो रमणता हो जाती है, वह दो प्रकार की है :

(1) 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा जानो और जो अच्छा नहीं लगता उसमें रमणता करनी पड़ती है। बाहर जाना अच्छा नहीं लगता लेकिन पहले हस्ताक्षर कर दिए है तो उस रमणता में रहना पड़ेगा।

(2) दूसरी है, स्वरूप की रमणता -

लोग पहली रमणता में तन्मयाकार हो जाते हैं जबकि हम सब को भी (पहले प्रकार की) रमणता होती तो ज़रूर है लेकिन हम उसके ज्ञाता-द्रष्टा रहते हैं। हम उसमें तन्मयाकार नहीं हो जाते।

प्रश्नकर्ता : हाँ, ठीक है। चंदू को देखते रहते हैं।

दादाश्री : चंदू जो भी करता है, वह ज्ञेय है और आप ज्ञाता हो। आप ज्ञाता हो, वह स्व-रमणता है। ज्ञेय को देखना ही स्व-रमणता है।

स्व-रमणता केवलचारित्र होने तक ही

हमें ज्ञाता-द्रष्टा स्वभाव में आना है, उसे चारित्र कहते हैं। जितना अखंड ज्ञान-दर्शन इकट्ठा होता है उतना ही चारित्र उत्पन्न हो जाता है।

चारित्र अर्थात् रमणता। द्रष्टा भाव में रहना, ज्ञाता-द्रष्टा में रहना और उसमें रमणता उत्पन्न होना, वह चारित्र है।

आत्मा की रमणता अर्थात् 'मैं शुद्धात्मा हूँ', उसका *लक्ष* वहाँ से लेकर अंत में 'शुद्ध चारित्र' में बरते वहाँ तक का।

प्रश्नकर्ता : स्वभाव रमणता ही यथाख्यात चारित्र है?

दादाश्री : हाँ, यथाख्यात कहलाता है। उससे आगे का जो चारित्र है, वह केवलचारित्र कहलाता है। यह जब पूर्ण हो जाता है तब केवलचारित्र कहलाता है।

उसके बाद वीतराग चारित्र में ही। उसकी रमणता उसी में रहा करती है। वह है भगवान महावीर का चारित्र।

आत्मा की पूर्ण दशा उत्पन्न होते तक यह रमणता रहती है। आत्मा की रमणता कब तक है? खुद की पूर्ण दशा उत्पन्न हो गई तो फिर रमणता रही ही नहीं न! खुद, खुद (पूर्ण स्वरूप, परमात्मा) ही हो गया न! अत: वह पूर्ण दशा आत्मा की ही है।

बाकी, शुद्धात्मा ही है। सर्व प्रकार से स्वभाव अर्थात् खुद का अन्य कोई स्वभाव है ही नहीं, वह ज्ञाता-द्रष्टा-परमानंदी है, वही उसका स्वभाव है अर्थात् खुद का निज स्वभाव। और शुद्धात्मा समझ में आ गया तो हो चुका, पूरा काम हो गया।

'मैं शुद्धात्मा हूँ', ज्ञाता-द्रष्टा, 'चंदूभाई क्या कर रहे हैं' उसे देखता रहता हूँ, उसे आत्मरमणता कहते हैं। 'आत्मा में रमणता की', ऐसा कहते हैं। आत्मा में रमणता करने का मार्ग है अपना। ये खिलौनों में रमणता करते हैं। वैसे तो यह पूरा जगत् ही खिलौनें में रमणता करता है। लेकिन चेतन जैसा आत्मा, यह परमात्मा है उसमें रमणता करता है खुद, उसे आत्मरमणता कहते हैं। यह देह की रमणता है, भौतिक चीज़ों की रमणता है, जड़ चीज़ की रमणता है जबकि वह चेतन की रमणता है।

चार प्रकार से शुद्धात्मा की रमणता

प्रश्नकर्ता : महात्माओं को 'निज वस्तु' में और अधिक रमणता कैसे हो सकती है?

दादाश्री : रमणता तो दो-चार प्रकार से होती हैं। अन्य कोई रमणता करनी नहीं आए तो 'मैं शुद्धात्मा हूँ,' 'मैं शुद्धात्मा हूँ', घंटे-दो घंटे ऐसा बोले तो चलेगा, ऐसे करते-करते रमणता आगे बढ़ती है।

प्रश्नकर्ता : दादा, आपने जो दो-चार प्रकार की आत्मरमणता कही है, उनके बारे में और अधिक समझाइए।

दादाश्री : कितने ही लोग 'शुद्धात्मा, शुद्धात्मा', करते हैं और कितने तो शुद्धात्मा लिखकर करते हैं। तो जो ऐसे लिखकर करते हैं, उसमें तो देह भी भीतर रमणता में ही रहता है। देह और वाणी दोनों ही रहते हैं। अत: मन तो भीतर रहता ही है और कितने तो, यों बाहर व्यवहार चल रहा हो फिर भी मन से यदि वास्तव में शुद्धात्मा में रमणता करें और उसके गुणों में रमणता करें तो वह सिद्धस्तुति कहलाती है। वह बहुत उपयोगी एवं बहुत फल देने वाली चीज़ है।

पहले मोटा-मोटा करे तब *पुद्गल* की रमणता छूटने लगती है। ऐसे करते-करते सूक्ष्म होता है और यदि उसके गुण बोलते ही रहें और शुद्धात्मा के गुणों में रमणता करें, जैसे कि 'मैं अनंत ज्ञान वाला हूँ,' 'मैं अनंत दर्शन वाला हूँ,' 'मैं अनंत सुख का धाम हूँ,' 'मैं अनंत शक्ति वाला हूँ' बोलें तो उतना ही यथार्थ रस उत्पन्न हो जाता है! वह यथार्थ रमणता कहलाती है। वह तुरंत ही, 'ऑन द मॉमेन्ट' फल देती है! खुद के सुख का अनुभव होता है।

प्रश्नकर्ता : *पुद्गल* के रसों को दबाने से आत्मा के रस उत्पन्न होते हैं क्या?

दादाश्री : नहीं, दबाने का कोई अर्थ ही नहीं है। वे तो अपने आप फीके हो जाते हैं। एक-एक घंटे तक आत्मा के गुण बोले जाएँ

तो तुरंत ही बहुत फल मिलता है। यह चीज़ तो नक़द फल देती है या फिर हर एक में 'शुद्धात्मा' देखते जाओ तो भी आनंद हो जाए, ऐसा है।

'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह निरंतर *लक्ष* में रहे और दूसरों को शुद्ध देखे तो, उसे शुद्ध रमणता कहा जाता है। उस रमणता आत्मा की रमणता कहा जाता है। फिर दूसरा, समभाव से *निकाल* करते समय आत्मा की रमणता। यदि समभाव से *निकाल* करते हो तो आत्मा की रमणता। फिर पाँचवा पद (पाँचवी आज्ञा) है शुद्धात्मा का खाता, अर्थात् आप यहाँ आए, वह आत्मरमणता। मतलब हमारी पाँचों आज्ञाएँ आत्मरमणता हैं।

प्रश्नकर्ता : सामने वाले व्यक्ति में शुद्धात्मा देखें, तो सामने वाले व्यक्ति को आनंद होना चाहिए न?

दादाश्री : नहीं होगा। क्योंकि उसकी वृत्तियाँ उस समय न जाने किसमें पड़ी होंगी! वह न जाने कौन से विचारों में पड़ा होगा! हाँ, उसमें 'शुद्धात्मा' देखने से आपको बहुत फायदा होगा। सामने वाले को फायदा तो सिर्फ 'ज्ञानी पुरुष' ही करवा सकते हैं!

आराधन करने जैसा, रमणता करने जैसा सिर्फ यह 'रियल' ही है! 'शुद्धात्मा' की रमणता अर्थात् निरंतर शुद्धात्मा का ध्यान रहे, वह! अब स्व-रमणता करनी है, और कुछ नहीं करना है।

दादा की भक्ति ही है शुद्धात्मा की भक्ति

फिर यह ज्ञान मिलने के बाद दादा याद आते रहते हैं न, उसे भी आत्मरमणता कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : दादा, यह समझ में नहीं आया। ज्ञान न मिला हो तो दादा की कीर्तन भक्ति पर-रमणता कहलाती है और ज्ञान मिला हो तो वही चीज़ स्व-रमणता कहलाती है?

दादाश्री : वह सब स्व-रमणता में आता है। ज्ञानी पुरुष ही खुद का प्रकट शुद्धात्मा हैं। अत: उनके लिए जो कीर्तन भक्ति होती है, वह सब स्व-रमणता में ही आता है। लेकिन वह रमणता 60 प्रतिशत फल देती है। 60 प्रतिशत रमणता तो बहुत बड़ी बात कहलाती है। यह 60 में से फिर 100 प्रतिशत हो जाएगी।

ज्ञानी पुरुष खुद का आत्मा है। मूल आत्मा को पाने में तो अभी देर लगेगी उसे, लेकिन ज्ञानी पुरुष की रमणता करें न, यों आँखों के सामने दिखें चलते-फिरते, तो फिर और क्या चाहिए? इससे ज़्यादा क्या चाहिए?

फिर दादा याद रहें। ये पद गाते रहो न तो यह 60 प्रतिशत रमणता हो जाती हैं, ऐसा है। सिर्फ पद ही गाता रहे, घंटे-दो घंटे और फिर जब ज़ुबानी हो जाए न तो बैठे-बैठे भी वे चलते रहेंगे।

दादा का नाम लेना, वह खुद के ही शुद्धात्मा का नाम लेने के बराबर है। ये जो पद(भजन) गाते हैं वे खुद के ही शुद्धात्मा का कीर्तन गाने जैसा है। यहाँ सबकुछ खुद अपने लिए ही है। यह आरती भी स्वयं खुद की ही करता है। हमारा कुछ भी नहीं। जिसे जितना करना आया उतना ही उसका काम होगा।

फिर भी वास्तव में जब दादा याद आते हैं तो उसे निज स्वरूप का साधन कहते हैं, निज स्वरूप नहीं कहते और आपको जो शुद्धात्मा का *लक्ष* रहता है, उसे निज स्वरूप की रमणता कहते हैं।

ज्ञानी ने देखा शुद्धात्मा

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी को देखते रहने से शुद्धात्मा रूप बन सकते हैं क्या?

दादाश्री : जिन्हें देखते हैं, उसी रूप होते जाते हैं। निरीक्षण करते रहने से उसी रूप होते जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : दूसरों को सामान्य रूप से देखते हैं तो उनमें शुद्धात्मा के भाव दिखाई देते हैं। दादा, आपके लिए वह विचार ही नहीं आता। मन आपके शरीर पर ही चिपक जाता है।

दादाश्री : ये देह सहित पूर्ण शुद्धात्मा कहे जाएँगे।

'दादा' का यह संग, यह सत्संग तो शुद्धात्मा का संग है, सब से अंतिम संग यहाँ दिया जाता है। केवलज्ञान के अलावा अन्य कुछ भी नहीं दिया जाता। लेकिन यह काल ऐसा है न, कि 360 डिग्री तक की पूर्णता तक जाने नहीं देता। ज्ञान तो वही का वही है, लेकिन जो प्रवर्तन रहना चाहिए, काल के कारण वह रह नहीं पाता।

शुद्धात्मा को तो सिर्फ ज्ञानी पुरुष ने ही देखा हुआ है कि शुद्धात्मा क्या है। बाकी, यह दर्शन अर्थात् प्रतीति होने के बाद, आगे के भाग का *लक्ष* बैठ जाता है, वह फिर (जागृति) जाता नहीं। वह श्रद्धा फिर टूटती नहीं है। बाद में, जैसे-जैसे आगे अनुभव होता जाता है, फिर जब उसका अनुभव नॉर्मल से कुछ आगे जाता है तब उसे खुद को दिखाई देता है कि खुद का स्वरूप कैसा है। वह अबंध स्वरूप है, कभी भी बंधा हुआ नहीं था।

'ज्ञानी पुरुष' को कितना सुंदर दिखाई देता होगा! सभी जगह शुद्धात्मा ही दिखाई देते हैं। हम 9वें गुणस्थानक में से जब 10वें गुणस्थानक में पहुँचे तभी से, अरे! अपार सुख का अनुभव किया! उस सुख का एक छींटा भी यदि बाहर गिरे और मनुष्य उसे चखे तो साल भर के लिए परम सुखी हो जाएगा!

इस ज्ञान में हमने जो देखा है, वह हकीकत हमारे पास हैं। 'ज्ञानी पुरुष' यानी जिन्हें कुछ भी जानना शेष नहीं हैं। 'ज्ञानी पुरुष' कभी मिल जाएँ, तब जो पूछना हो वह पूछ लेना। तब यदि खुद का काम नहीं *निकाल* ले तो किस काम का?

ज्ञानी के ज्ञान से निरालंब की शुरुआत

अंत में कभी न कभी निरालंब होना ही पड़ेगा न? तब तक अवलंबन तो लेना पड़ेगा! सत् के अवलंबन लेने पड़ेंगे।

ज्ञानी पुरुष से ज्ञान मिलने के बाद से निरालंब होने लगते हैं। अभी भी संपूर्ण रूप में निरालंब नहीं हुए हैं। निरालंब होने की शुरुआत हो चुकी है तब तक *हूँफ* ही ढूँढता रहता है। पूरी रात में क्या कोई खा जाएगा? साथ वाला भी सो जाता है और यह भी सो जाता है। किसकी *हूँफ* ढूँढ रहा है? लेकिन जब तक संसार जागृति है तब तक *हूँफ* है लेकिन आत्मा हो जाने के बाद *हूँफ* नहीं रहती। धीरे-धीरे भय कम होते जाते हैं। आप आत्मा हो गए हैं न, अब भय कम लगते हैं न?

प्रश्नकर्ता : किसी का भी भय नहीं, निर्भय!

दादाश्री : जबकि इस दुनिया के लोग तो, अगर रात को अकेले रहना हो, तब भी *हूँफ* ढूँढते हैं। अकेले को तो नींद भी नहीं आती। *हूँफ* ढूँढते हैं दुनिया के लोग।

अब मैंने आपको निरालंब बना दिया है। अब जो हूँफ ढूँढते हो न, वह तो सारी डिस्चार्ज है। अभी आप निरालंब हो लेकिन आपका निरालंब एक्ज़ेक्ट निरालंब नहीं कहलाएगा। आप शब्दावलंबन स्थिति में आ गए हो, बहुत बड़ी स्थिति कहलाती है। यह पद तो देवी-देवताओं को भी नहीं मिलता। बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों ने किसी ने नहीं देखा है ऐसा पद है यह, इसलिए काम *निकाल* लेना।

इतनी सेफसाइड और इतना आनंद! भीतर, सुख के लिए उन्हें अन्य किसी की ज़रूरत ही नहीं हैं। खुद अपने स्वभाव से ही सुखमय अर्थात् निरालंब हैं, जिसे आलंबन की ज़रूरत ही नहीं है ऐसा आत्मा दिया है। दादा अठहत्तर साल की उम्र में कैसे रहते हैं, नहीं? अवलंबन की वजह से तो परवशता हो गई है। अवलंबन ही परवशता है न!

शुद्धात्मा का आधार, वही है दादा का आधार

जगत् अवलंबन से जीवित है, आधार से जीवित है। जब वह आधार निराधार हो जाता है तब कल्पांत करता है। सिर्फ ज्ञानी पुरुष ही आधारित नहीं हैं। निरालंब हैं। कोई आलंबन नहीं। ज्ञानी पुरुष खुद एब्सल्यूट हो चुके हैं इसलिए उन्हें आधार-आधारित संबंध नहीं रहे। एब्सल्यूट! भले ही जगत् कल्याण की यह भावना रह गई है लेकिन खुद हो तो चुके हैं एब्सल्यूट! एब्सल्यूट अर्थात् निरालंब। उन्हें किसी अवलंबन की ज़रूरत नहीं हैं! स्वतंत्र केवल! केवल ही, अन्य कोई मिक्स्चर नहीं।

प्रश्नकर्ता : जब तक एब्सल्यूट नहीं हो जाते, क्या तब तक ज्ञानी का आधार लेना पड़ेगा?

दादाश्री : हाँ, शुद्धात्मा का आधार, दादा का आधार। समुद्र में बेटे को यों हाथ में उठा रखा हो, वह बच्चा नीचे यों पैर हिलाकर देखता है कि पैर तले तक पहुँच रहे हैं या नहीं! वह देखता तो है लेकिन अगर नहीं पहुँचते तो वापस हम से चिपट जाता है लेकिन जब पैर नीचे पहुँच जाएँ तो हमें हटाकर छोड़ देता है। हमें धीरे-धीरे छोड़ने लगे तो क्या हम नहीं समझ जाएँगे कि, 'अरे इसके पैर नीचे तक पहुँच गए हैं'। पैर पहुँच जाएँगे तो छोड़ नहीं देगा? छोड़ देगा! उसके पैर नीचे पहुँचने चाहिए। उसी प्रकार आप तभी तक मुझसे चिपटे हुए हो न! जब आपके पैर नीचे तक पहुँच जाएँगे तो आपको मुझे छोड़ देना है। इस अवलंबन को भी छोड़ देना है। शब्दों का अवलंबन कब तक रखना हैं? आपके पैर नीचे तक न पहुँच जाएँ, तब तक। आप खुद निरालंब हो जाओगे तब यह छूट जाएगा। अपने आप ही छूट जाएगा। तब तक दादा के अवलंबन की ज़रूरत है, शुद्धात्मा के अवलंबन की ज़रूरत है। दादा के ही पीछे घूमते रहो, वे जहाँ जाएँ, वहाँ। यदि (कर्म) अवकाश दें तो। अवकाश कौन देंगे? आपके उदयकर्म आपको अवकाश देंगे तो दादा के पीछे घूमते रहना और अगर अवकाश नहीं दें तो ऐसा तय करना कि कब मुझे अवकाश प्राप्त हो!

चित्त दादा भगवान को याद करे, सभी में दादा दिखाई दें, वह चित्त बहुत अच्छा कहलाता है। ऐसा बहुत सारे महात्माओं को रहता है। बहुत से महात्माओं को कम-ज़्यादा प्रमाण में रहता है। किसी को ज़्यादा प्रमाण में रहता है और किसी को कम प्रमाण में रहता है और दादा भगवान ही खुद का शुद्धात्मा हैं। इसलिए चित्त शुद्धात्मा में रखो या दादा भगवान में रखो, सब एक ही चीज़ है।

शुद्धात्मा का *लक्ष*, वही केवल समझ

'मैं शुद्धात्मा हूँ', उसका निरंतर *लक्ष* केवलदर्शन है। केवलदर्शन अर्थात् सबकुछ समझ में आ गया है। कुछ लोगों को अगर गहराई (सूक्ष्मता) से समझ में नहीं आया हो लेकिन 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वास्तव में वह फिट हो गया हो तो उसे केवल समझ कहते हैं।

यहाँ हमें शुद्धात्मा का *लक्ष* रहता है इसलिए लगता है कि शुद्धात्मा जैसा कुछ है, वह केवलदर्शन है, वह क्षायक समकित है। उसका फल क्या है? आकुलता-व्याकुलता खत्म हो जाती है और निराकुलता रहती है।

इसलिए अब शंका खत्म हो गई। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह नि:शंक पद है और नि:शंक पद को भगवान ने क्षायक समकित कहा है। नि:शंक पद जब तक उत्पन्न नहीं होता तब तक वहाँ पर क्षायक समकित नहीं कहलाता। क्षायक समकित को भगवान ने केवलदर्शन कहा है। अब हमें समझ-समझकर केवलज्ञान के अंश प्राप्त करने हैं। 360 तक पहुँचते-पहुँचते सबकुछ समझना है। जितना समझ में आया उतना समा जाएँगे फिर।

'मैं शुद्धात्मा हूँ' यदि ऐसा रहा करे तो वह भाव नहीं है, लेकिन वह *लक्ष* स्वरूप है; और *लक्ष* मिले बिना 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा रहेगा ही नहीं। 'शुद्धात्मा' का *लक्ष* बैठना वह तो बहुत बड़ी बात है! अति कठिन है! *लक्ष* मतलब जागृति और जागृति वही ज्ञान है, लेकिन वह अंतिम ज्ञान नहीं है। अंतिम ज्ञान तो आत्मा का स्वभाव ही है। केवलज्ञान स्वभावी आत्मा का *लक्ष* बैठ जाने के बाद उसकी जागृतिरूपी ज्ञान में रहना, वह सब से ऊँची और अंतिम भक्ति है, लेकिन हम उसे भक्ति नहीं कहते, क्योंकि फिर सब उसे अपने-अपने स्थूल अर्थ में ले जाएँगे। 'ज्ञानी पुरुष' की कृपा प्राप्त कर लेने जैसी है, कृपाभक्ति की आवश्यकता है।

पंचाज्ञा और कृपा के प्रसाद से होगा केवलज्ञान

प्रश्नकर्ता : आप जितने (डिग्री के) 'ज्ञानी' हैं, उतना ज्ञान प्राप्त करने के लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : ज्ञानी पुरुष के पास जाना चाहिए। ज्ञानी पुरुष मोक्षदाता कहे जाते हैं। उनके (ज्ञानी के) पास बैठना चाहिए। उनकी कृपा प्राप्त करनी चाहिए। बस और कुछ भी नहीं करना है। 'ज्ञानी' की कृपा से ही सब होता है। कृपा से 'केवलज्ञान' होता है।

प्रश्नकर्ता : केवलज्ञान देने से मिलता है या खुद के पुरुषार्थ करने से मिलता है?

दादाश्री : केवलज्ञान पुरुषार्थ का फल नहीं है। केवलज्ञान तो केवलज्ञानी का कृपा प्रसाद है, इनाम है। और कुछ भी नहीं है, प्रसाद ही है! पुरुषार्थ से कुछ भी नहीं होता।

यहाँ हम ज्ञान देते हैं, तब एक समय के लिए शुद्ध चित्त की प्राप्ति करता है। यह ज्ञान केवलज्ञान होने तक नहीं छोड़ता, एक समय की ही ज़रूरत है। एक समय के लिए भी नहीं हुआ है इस दुनिया को। एक समय के लिए भी दुनिया ने देखा ही नहीं है, सुना ही नहीं है। आत्मामय हुआ ही नहीं है। एक समय के लिए भी हो गया तो हो चुका। फिर वह केवलज्ञान (होने) तक छोड़ेगा नहीं।

भ्रांति समर्पित होते ही शुद्धात्मा पद की प्राप्ति

आप मुझे क्या समर्पित करते हो? जिससे आपको भ्रांति उत्पन्न होती थी, उस भ्रांति के कारणों को, भ्रांति और भ्रांति का फल, आप मुझे वह सब समर्पित कर देते हो इसलिए आप शुद्धात्मा बन जाते हो।

ज्ञान ही आत्मा है और 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह अंतिम भक्ति है। 'ज्ञानी' का निदिध्यासन ही 'मैं शुद्धात्मा हूँ' रूपी अंतिम भक्ति है।

ज्ञानियों का 'प्रतिष्ठित आत्मा' भक्ति में है और ज्ञान, 'ज्ञान' में है। 'खुद' 'शुद्धात्मा' में रहते हैं और 'प्रतिष्ठित आत्मा' से उनके 'खुद' के 'शुद्धात्मा' की और इन 'दादा' की भक्ति करवाते हैं, वह उच्चतम अंतिम प्रकार की भक्ति है!

किसी के भी प्रभाव में न आए, ऐसी दुनिया को तुझे एक तरफ रखना आए, उसे समर्पण भाव कहते हैं। यानी कि जो 'ज्ञानी पुरुष' का हो, वही मेरा हो। अपनी नाव उनसे अलग होने ही नहीं दे, जुड़ी हुई ही रखे, अलग हो जाए तो पलट जाएगी न! इसलिए ज्ञानी के साथ ही अपनी नाव जोड़कर रखना।

ज्ञानी ही खुद का शुद्धात्मा

कृपालुदेव ने कहा है, 'आत्मा तो ज्ञानी के हृदय में है।' किताबों में स्थूल आत्मा है। वह स्थूल आत्मा काम नहीं आएगा, सूक्ष्मतम आत्मा होना चाहिए। जिसे केवलज्ञान कहा जाता है। उस सूक्ष्मतर तक पहुँचना चाहिए न? हम सूक्ष्मतर तक पहुँचे हैं। ऐसा है यह विज्ञान! अब सूक्ष्मतम में जाना बाकी है।

इसलिए कृपालुदेव ने क्या बताया है? 'ज्ञानी पुरुष या सद्गुरु, वे ही अपना आत्मा हैं।' कब तक? जब तक कि आपको स्पष्टवेदन नहीं हुआ, भीतर अस्पष्ट वेदन है। सुख उत्पन्न होता है लेकिन कैसे, कहाँ से होता है और किस प्रकार होता है, वह जब तक अस्पष्ट है तब तक ज्ञानी पुरुष आपका आत्मा हैं और भीतर स्पष्ट हो गया, तो आप मुक्त हो गए। फिर स्वतंत्र हो गए। जब तक अस्पष्ट है तब तक ज्ञानी पुरुष का अवलंबन है।

जब तक आत्मा का स्पष्ट वेदन नहीं हुआ तब तक ज्ञानी पुरुष का निदिध्यासन, वह स्पष्ट वेदन है। वे खुद का शुद्धात्मा हैं, खुद का ही आत्मा हैं। वे जैसा कहें, उसी तरह करना है, तो फिर सभी आगमों का भेद, सभी शास्त्रों का भेद खुद को प्राप्त हो जाएगा।

'दादा' की आराधना की, वही 'शुद्धात्मा' की आराधना करने के बराबर है और वही परमात्मा की आराधना है और वही मोक्ष का कारण है।

इसलिए हम कहते हैं न कि 'अरे! दादा-दादा करो न, आपका काम हो जाएगा।' यह आश्चर्य है इस काल का! ग्यारहवाँ आश्चर्य!

जबकि सच्चे सत्देव तो जो भीतर वाले 'शुद्धात्मा' हैं, वे हैं। 'शुद्धात्मा' ही यथार्थ महावीर हैं, लेकिन 'शुद्धात्मा' का *लक्ष* बैठने के बाद भी जब तक उसका अनुभव नहीं हुआ, तब तक 'ज्ञानी पुरुष' ही खुद का आत्मा हैं।

जब तक हम हाज़िर हैं तब तक यह हमारा फोटो भी प्रत्यक्ष है। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', का ध्यान शायद किसी को नहीं रहे लेकिन यदि 'दादा' का ही ध्यान रहें तो वे दोनों एक ही हैं। क्योंकि 'ज्ञानी पुरुष', वे ही आपका आत्मा हैं।

- जय सच्चिदानंद

खुद के साथ बातचीत का प्रयोग

प्रश्नकर्ता : आप कहते हैं कि, 'हम वाणी के ज्ञाता-द्रष्टा हैं, वाणी को 'देखते' रहते हैं कि क्या निकल रहा है', तो एक्चुअली अंदर इस तरह से कहते हैं, अंदर इस तरह से बातें कहते हैं, ऐसा ही कुछ है न?

दादाश्री : इस तरह से देखना सीखो। तू चंदूभाई को 'देखना' सीख।

प्रश्नकर्ता : हाँ, लेकिन इस तरह से 'देखना' सीखना अर्थात् इस तरह से बातें करनी हैं न अंदर?

दादाश्री : बातें करने से और भी अधिक 'देखना' सीख सकते हैं। इन्टरेस्ट आता जाता है इसलिए अलग रहने का भाव होता जाता है और हैं ही इतने ज़्यादा अलग!

प्रश्नकर्ता : इस तरह बोलने से वास्तव में जुदापन का यह व्यवहार शुरू हो जाता है।

दादाश्री : यों हँसी मज़ाक करने से, मज़ाक करने से, देखने से जुदापन आ जाता है। मैं तो ऐसा भी कहता हूँ न 'कैसे हो! मज़े में हो न! अंबालाल भाई, मौज में आ गए हो, कुछ हुआ लगता है!' इसलिए हम फ्रेश रह सकते हैं न! यों हम पूरे दिन फ्रेश रहते हैं इसलिए इतना काम करते हैं।

प्रश्नकर्ता : आपने बहुत सालों पहले कहा था कि, 'खुद से बातचीत करना। शक्ति बहुत बढ़ जाएगी।' अत: यह बातचीत का प्रयोग बहुत ही उच्च चीज़ है। अपने अक्रम विज्ञान के बारे में जो कहें न, तो इतना, यह जुदा रखने की प्रक्रिया पूरी आधार जैसी चीज़ है।

दादाश्री : हम कहें कि 'ज़्यादा चाय पीना तेरे लिए अच्छा नहीं है'। तब यदि वह कहे कि 'नहीं! पीनी है।' 'तो पीओ फिर।' बातचीत करके जुदापन का लाभ ले लेना है हमें।

प्रश्नकर्ता : सही है, और इस तरह की बातचीत से बाहर की *निर्जरा* (आत्मप्रदेश में से कर्मों का अलग होना) तो अपने आप हो ही जाएगी। यह सब उपयोगपूर्वक कहा जाएगा न? यों बाहर पूरा बीमारी का असर हो, वीकनेस हो फिर भी अंदर बातचीत चलती ही रहेगी?

दादाश्री : वह तो रहेगी ही।

प्रश्नकर्ता : उस समय आप क्या बात करते हैं?

दादाश्री : सभी। वह तो जैसा है वैसा ही।

प्रश्नकर्ता : यानी कि आप अंदर पूछते हैं? 'कैसी लग रही है तबियत', ऐसा पूछते हैं? ऐसा सब करते हैं?

दादाश्री : ये भाई अगर कहें कि, 'दादा, अब रूम में अंदर थोड़ा चलिए, घूमिए।' तो वे घूमते हैं। उस समय मैं देखता रहता हूँ कि 'ओहोहो! कैसे दिख रहे हैं! क्या हालत हुई है आपकी? आप जिस तरह से चल रहे हो उस पर मुझे हँसी आ रही है कि यह हालत तो देखो! किसी को छूने नहीं दें ऐसे इंसान, तो आज आपको हाथ पकड़कर चलाना पड़ रहा है!'

प्रश्नकर्ता : तो इसमें, वह जो किसी को छूने नहीं दें, वही आप! हाथ पकड़कर चलते हैं, वह भी आप! सब पूरा अलग हो जाता है। इसमें अंहकार बिल्कुल भी नहीं रहता। मालिकी भाव नहीं रहता। सबकुछ खत्म हो जाता है पूरी तरह से!

दादाश्री : हम छूट देते हैं उसे कि जो करना हो कर। फिर हम उनके साथ ऐसी मज़ाक भी कर लेते हैं कि 'ओहोहो! आप पर तो कोई असर ही नहीं होता न! अब तो आप पूरे भगवान बन गए लगते हो न!' तब कहते हैं, ''नहीं, 'आप' भगवान हैं, 'मै' नहीं हूँ भगवान।''

(परम पूज्य दादाश्री की ज्ञानवाणी में से संकलित)

आत्मज्ञानी पूज्य दीपकभाई के सानिध्य में ओनलाइन सत्संग कार्यक्रम

गुरुपूर्णिमा महोत्सव

21 जुलाई	सुबह 10-30 से 12	- **सत्संग (टोपिक दादावाणी : दिसम्बर-2020)**
	शाम 4 से 5	- **स्पेशल वीडियो**
	रात 8-30 से 10	- **पारायण (दादावाणी : नवम्बर-2018)**
22 जुलाई	सुबह 10-30 से 12	- **प्रश्नोत्तरी सत्संग**
	शाम 4 से 5	- **स्पेशल वीडियो**
	रात 8-30 से 10	- **पारायण (दादावाणी : नवम्बर-2018)**
23 जुलाई (गुरुपूर्णिमा)	सुबह 8 से 12	- **पूजन, आरती, किर्तन भक्ति**
	दोपहर 1-15	- **पूज्यश्री के साथ महाप्रसाद (लाईव)**
	शाम 4 से 5	- **गुरुपूर्णिमा पर स्पेशल वीडियो**
	रात 8-30 से 10	- **प्रश्नोत्तरी - 'ज्ञानी पुरुष' भाग-4 विमोचन**
24 जुलाई	सुबह 10-30 से 12	- **सत्संग (टोपिक - दादावाणी : नवम्बर-2013)**
	शाम 4 से 5	- **स्पेशल वीडियो**
	रात 8-30 से 10	- **पारायण (दादावाणी : नवम्बर-2018)**
25 जुलाई	सुबह 10-30 से 12	- **प्रश्नोत्तरी सत्संग**
	रात 8-30 से 10	- **लाईव गरबा (महात्माओ झूम पर जुडेंगे)**

पर्युषण पारायण - वर्ष 2021

3 से 10 सितम्बर : आप्तवाणी 14 भाग-2 गुजराती ग्रंथ पर **सत्संग पारायण**

नोट : आप्तवाणी-14 भाग-2 गुजराती बुक के पेज नंबर 241 से वाचन होगा।

'दादावाणी' के सदस्यों के लिए सूचना

हिन्दी और अंग्रेजी भाषाओं में दादावाणी पत्रिका हर महिने 15वी तारीख को पोस्ट की जाती है। जिन महात्माओं को 'दादावाणी' पत्रिका विलंब से या तो अनियमित रूप से मिलती है, वे पूर्व प्राप्त पत्रिका के कवर पर अपना नाम, पता, पीनकोड आदि जाँच कर लें। यदि उसमें कोई भूल हो तो आपका ग्राहक नं, पूरा नाम-पता, पीनकोड के साथ लिखकर मोबाईल नं. 8155007500 पर SMS करें। आप अडालज त्रिमंदिर के पते पर पत्र से या dadavani@dadabhagwan.org पर इ-मेइल से भी सूचित कर सकते हैं। जिससे आपकी यहाँ दर्ज की गई जानकारी में सुधार किया जा सके। यदि आपको दादावाणी का अंक न मिले तो उपर दिए गए कोई भी माध्यम से हमें सूचित करें। यदि अंक स्टोक में होगा तो आपको फिर से भेजा जाएगा।

त्रिमंदिरो के संपर्क : अडालज : 9328661166-77, **राजकोट :** 9924343478, **भूज :** 9924345588, **मुंबई :** 9323528901, **अंजार :** 9924346622, **मोरबी :** 9924341188, **सुरेन्द्रनगर :** 9737048322, **अमरेली :** 9924344460, **वडोदरा :** 9574001557, **गोधरा :** 9723707738, **जामनगर :** 9924343687. **अन्य सेन्टरों के संपर्क : अहमदाबाद (दादा दर्शन) :** (079) 27540408, **वडोदरा (दादा मंदिर) :** 9924343335, **दिल्ली :** 9810098564, **बैंगलूर :** 9590979099, **कोलकता :** 9830080820 **यु.एस.ए.-केनेडा:** +1 877-505-3232, **यु.के.:** +44 330-111-3232, **ऑस्ट्रेलिया:** +61 402179706

पूज्य नीरू माँ/पूज्य दीपक भाई को देखिए टी.वी. चैनल पर

भारत

- 'दूरदर्शन गिरनार' पर रोज सुबह 7-30 से 8-30, रात 9 से 10
- 'अरिहंत' चैनल पर रोज सुबह 2-50 से 3-50, दोपहर 2-30 से 3, रात 8 से 9
- 'वालम' पर रोज 6 से 6-30 (सिर्फ गुजरात राज्य में)
- 'स्वरश्री' पर हर रोज सुबह 11-30 से 12 (सिर्फ गुजरात राज्य में)
- 'दूरदर्शन उत्तरप्रदेश' पर हर रोज सुबह 7-30 से 8, रात 8-30 से 9-30 (हिन्दी में)
- 'साधना' पर रोज सुबह 7-50 से 8-15 तथा रात 9-30 से 9-55 (हिन्दी में)
- 'उड़ीसा प्लस' टी.वी. पर रोज सुबह 7-30 से 8 (हिन्दी में-केवल उड़ीसा राज्य में)
- 'दूरदर्शन सह्याद्रि' पर रोज सुबह 7 से 7-30 (मराठी में)
- 'आस्था कन्नड़ा' पर रोज दोपहर 12 से 12-30 तथा शाम 4-30 से 5 (कन्नड़ा में)

USA - Canada

- 'TV Asia' पर रोज सुबह 7-30 से 8 EST

U K

- 'वीनस' टी.वी. पर रोज सुबह 8 से 8-30 GMT (हिन्दी में)
- 'वीनस' टी.वी. पर रोज सुबह 8-30 से 9 GMT
- 'MA TV' पर रोज शाम 5-30 से 6-30 GMT

Australia

- 'Rishtey' पर हर रोज सुबह 8 से 8-30 तथा दोपहर 1-30 से 2 (हिन्दी में)

Fiji - NZ - Singapore - SA - UAE

- 'Rishtey' पर हर रोज सुबह 6 से 6-30 तथा 7-30 से 8 (हिन्दी में)

USA - UK - Africa - Australia

- 'आस्था ग्लोबल' पर सोम से शुक्र रात 10 से 10-30 IST
  (डिश टी.वी. चैनल UK -849, USA-719) (गुजराती और हिन्दी में)

जुलाई 2021
वर्ष-16 अंक-9
अखंड क्रमांक - 189

दादावाणी

Date Of Publication On 15th Of Every Month
RNI No. GUJHIN/2005/17258
Reg. No. G-GNR-348/2021-2023
Valid up to 31-12-2023
LPWP Licence No. PMG/NG/036/2021-2023
Valid up to 31-12-2023
Posted at Adalaj Post Office
on 15th of every month.

ज्ञानी वही मेरा आत्मा!

भगवान ने कहा है कि, 'ज्ञानी पुरुष, वही खुद का आत्मा हैं।' और ये दादा याद रहते हैं न, वही आत्मा है! वर्ना, याद रहते ही कैसे? ज्ञानी पुरुष ही आपका आत्मा है। इसलिए जब तक आपको अपने आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव न हो जाए, तब तक ज्ञानी पुरुष के कहे अनुसार चलो। यह तो आपको प्रत्यक्ष अनुभव होता है। आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव जो कि रात-दिन आपको सावधान करता है। नहीं करता? अब, 'चंदूभाई' गुस्सा करता रहता है लेकिन यदि वह चिढ़ जाए तो 'आप' अंदर ही अंदर मना करते हो। 'नहीं, ऐसा नहीं होना चाहिए।' वह क्या है? ये दो कौन हैं? पहले दो नहीं थे। वह, आत्मा हाजिर है निरंतर। अक्रम विज्ञान का आत्मा है वह। लाख जन्मों में भी ऐसा आत्मा प्रकट नहीं होता और यदि प्रकट हो जाए तो चिंता नहीं होती।

- दादाश्री

Printed and Published by Dimple Mehta on behalf of Mahavideh Foundation - Owner. Printed at Amba Offset, B - 99, GIDC, Sector - 25, Gandhinagar - 382025.